



# JOTI JOURNAL

(BI-MONTHLY)



**APRIL 2021**

**MADHYA PRADESH STATE JUDICIAL ACADEMY  
JABALPUR**

## MADHYA PRADESH STATE JUDICIAL ACADEMY, JABALPUR

*Hon'ble Shri Justice Mohammad Rafiq*

Chief Justice  
& Patron

### GOVERNING COUNCIL

*Hon'ble Shri Justice Prakash Shrivastava*

Chairman

*Hon'ble Shri Justice Sheel Nagu*

Co-Chairman

*Hon'ble Shri Justice Sujoy Paul*

Co-Chairman

*Hon'ble Shri Justice Anand Pathak*

Member

*Hon'ble Shri Justice Rajeev Kumar Dubey*

Member

*Vice Chancellor, National Law Institute University,  
Bhopal*

Member

*Vice Chancellor, Dharmashastra National Law  
University, Jabalpur*

Member

*Director, M.P. State Judicial Academy*

Member-Secretary

### EXECUTIVE COUNCIL

*Hon'ble Shri Justice Sujoy Paul*

Member

*Hon'ble Shri Justice Anand Pathak*

Member

*Hon'ble Shri Justice Rajeev Kumar Dubey*

Member



### FOUNDER OF THE INSTITUTE AND JOTI JOURNAL

*Hon'ble Shri Justice U.L. Bhat*

Former Chief Justice, High Court of M.P.



### EDITOR

*Ramkumar Choubey*

Director



### ASSOCIATE EDITORS

*Dhirendra Singh, Faculty Sr., Tajinder Singh Ajmani, OSD,  
Jayant Sharma, Faculty Jr., Yashpal Singh, Dy. Director, Anu Singh, OSD*

# JOTI JOURNAL APRIL - 2021

## SUBJECT- INDEX

Editorial	31
-----------	----

### **PART-I (ARTICLES & MISC.)**

1. Photographs	33
2. Hon'ble Shri Justice Vishnu Pratap Singh Chauhan, Hon'ble Shri Justice Jagdish Prasad Gupta and Hon'ble Shri Justice Mohammad Fahim Anwar demit office	41
3. Obituary	44
4. मानसिक स्वास्थ्य एवं देखरेख अधिनियम, 2017 : संक्षिप्त परिचय	45
5. Domestic Violence Act : Key Issues and Emerging Trends	55
6. बालकों का पुनर्वास : एक बहुआयामी दृष्टिकोण	67
7. विधिक समस्याएँ एवं समाधान	85
i. क्या धारा 138 परक्राम्य लिखत अधिनियम के अंतर्गत चेक अनादरण के अपराध से संबंधित परिवाद पर संस्थित प्रकरण में विचारण कार्यवाही धारा 258 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत रोक़ी अथवा समाप्त की जा सकती है?	
ii. क्या विचारण न्यायालय ऐसे दोषसिद्ध अभियुक्त को धारा 389(3) दण्ड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत जमानत पर मुक्त कर सकता है जिसकी सज़ा का भुगताया जाना प्रारंभ हो चुका हो?	
iii. क्या मध्यस्थ (मीडिएटर) द्वारा न्यायालय को प्रेषित प्रतिवेदन निष्पादन योग्य होता है?	
iv. क्या (निजी परिवाद से भिन्न) किसी दाण्डिक विचारण में निजी व्यक्ति अथवा पीड़ित की ओर से प्रतिनिधित्व करने वाले अधिवक्ता को सीधे किसी साक्षी का परीक्षण करने का अधिकार है?	

## PART-II (NOTES ON IMPORTANT JUDGMENTS)

ACT/ TOPIC	NOTE NO.	PAGE NO.
<b>APPRECIATION OF EVIDENCE:</b>		
<b>साक्ष्य का मूल्यांकन:</b>		
– See Criminal Practice.		
– देखें आपराधिक प्रथा।	67	68
– See Sections 154 and 313 of the Criminal Procedure Code, 1973, Sections 90 and 376 of the Indian Penal Code, 1860 and Section 6 of the Protection of Children from Sexual Offences Act, 2012.		
– देखें दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धाराएं 154 एवं 313, भारतीय दण्ड संहिता, 1860 की धाराएं 90 एवं 376 तथा लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम, 2012 की धारा 6।	71	75
– See Sections 3, 8 and 9 of the Evidence Act, 1872.		
– देखें साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धाराएं 3, 8 एवं 9।	91	104
<b>ARBITRATION AND CONCILIATION ACT, 1996</b>		
<b>माध्यस्थम एवं सुलह अधिनियम, 1996</b>		
<b>Sections 2(1) (e), 9, 14, 34 and 36</b> – Jurisdiction – Court – Commercial disputes involving an arbitration dispute – Only Commercial Court of the status of District Judge or Additional District Judge would be the competent Court to entertain matters u/s 9, 14, 34 and 36 of the Arbitration Act and Civil Judge Class I is excluded to hear such matters.		
धाराएं 2(1) (ड), 9, 14, 34 एवं 36 – क्षेत्राधिकार – न्यायालय – ऐसे वाणिज्यिक विवाद जिनमें माध्यस्थम विवाद शामिल है, के संबंध में माध्यस्थम अधिनियम की धाराएं 9, 14, 34 एवं 36 से संबंधित प्रकरणों की सुनवाई के लिये मात्र जिला न्यायाधीश या अपर जिला न्यायाधीश के स्तर का ही वाणिज्यिक न्यायालय सक्षम न्यायालय होता है और कोई व्यवहार न्यायाधीश वर्ग-1 का न्यायालय ऐसे प्रकरणों की सुनवाई नहीं कर सकता है।	60	63
<b>CIVIL PRACTICE:</b>		
<b>सिविल प्रथा:</b>		
– Date of hearing – Discretion of Court – Complete discretion can be used by the Presiding Officer of the Court for fixing the date of hearing/ proceedings and he is the best person to decide how to use his judicial time.		
– सुनवाई की तिथि – न्यायालय का विवेकाधिकार – सुनवाई/कार्यवाही हेतु तिथि निर्धारण के लिये न्यायालय के पीठासीन अधिकारी द्वारा संपूर्ण विवेकाधिकार का प्रयोग किया जा सकता है और वह अपने न्यायिक समय के उपयोग की प्रक्रिया निर्धारण के लिये सर्वोत्तम व्यक्ति होता है।	61	64



ACT/ TOPIC	NOTE NO.	PAGE NO.
– Will – Doctrine of election and doctrine of estoppel – Remaining portion of the Will cannot be challenged by a person who has taken benefit of a particular portion of the Will because of doctrine of election – After taking benefits of any instrument/document, validity of the instrument/document cannot be challenged.		
– वसीयत – चुनाव का सिद्धान्त एवं विबन्ध का सिद्धान्त – एक व्यक्ति जिसने वसीयत के किसी भाग विशेष का लाभ प्राप्त कर लिया है, वह चुनाव के सिद्धान्त के कारण वसीयत के शेष भाग को चुनौती नहीं दे सकता है – किसी लिखत/दस्तावेज का लाभ लेने के पश्चात् उसकी वैधता को चुनौती नहीं दी जा सकती।	62	65
– See Order 6 Rule 2, Order 7 Rule 14 and Order 18 Rule 2 of the Civil Procedure Code, 1908.		
– देखें सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 का आदेश 6 नियम 2, आदेश 7 नियम 14 एवं आदेश 18 नियम 2।	65*	67

## CIVIL PROCEDURE CODE, 1908

### सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908

**Section 11 and Order 23 Rule 1** – *Res judicata* and waiver of rights – Principle of *res judicata* and principle of waiver of rights are totally different principles – If any plaintiff withdraws his suit without permission of court then a new suit about same subject-matter cannot be filed by him.

**धारा 11 एवं आदेश 23 नियम 1** – पूर्व न्याय एवं अधिकारों का अधित्यजन – पूर्व न्याय का सिद्धान्त एवं अधिकारों के अधित्यजन का सिद्धान्त पूर्णतः भिन्न-भिन्न सिद्धान्त हैं – यदि कोई वादी न्यायालय की अनुमति के बिना अपना वाद प्रत्यादृत करता है तो वह समान विषय वस्तु के बारे में नवीन वाद प्रस्तुत नहीं कर सकेगा।

63 65

**Section 21 and Order 7 Rule 10** – Jurisdiction of courts – Factors governing determination of – Explained – Difference between jurisdiction of civil and criminal courts and objection as to jurisdiction explained.

**धारा 21 एवं आदेश 7 नियम 10** – न्यायालयों का क्षेत्राधिकार – निर्धारण करने वाले कारक – स्पष्टीकृत – सिविल और आपराधिक न्यायालयों के क्षेत्राधिकार के अंतर और क्षेत्राधिकार संबंधी आपत्ति स्पष्ट की गई।

69 (i) 69

**Order 2 Rule 2 (3) and Order 7 Rule 11** – Maintainability of suit – Objections – Objections under Order 2 Rule 2 (3) do not come under Order 7 Rule 11 CPC and such objections cannot be considered before trial.

**आदेश 2 नियम 2 (3) एवं आदेश 7 नियम 11** – वाद की पोषणीयता – आक्षेप – आदेश 2, नियम 2 (3) के अंतर्गत आक्षेप, आदेश 7 नियम 11 के अंतर्गत नहीं आते हैं और ऐसे आक्षेपों को विचारण से पूर्व विचार में नहीं लिया जा सकता।

64 66

ACT/ TOPIC	NOTE NO.	PAGE NO.
<p><b>Order 6 Rule 2, Order 7 Rule 14 and Order 18 Rule 2</b> – Application to summon records – After conclusion of evidence when case fixed for final arguments – Absence of pleadings on issue in which evidence was sought – Held, such an application is not maintainable – In absence of pleading, no amount of evidence will help the party.</p> <p><b>आदेश 6 नियम 2, आदेश 7 नियम 14 एवं आदेश 18 नियम 2</b> – अभिलेख आहूत करने संबंधी आवेदन – साक्ष्य पूर्ण होने के उपरांत जब मामला अंतिम तर्क हेतु नियत था – जिस विवाद पर साक्ष्य प्रस्तावित थी उस पर कोई अभिवचन नहीं था – अभिनिर्धारित, ऐसा आवेदन पोषणीय नहीं है – अभिवचन के अभाव में कितनी भी साक्ष्य हो पक्षकार की सहायता नहीं कर सकती।</p>	65*	67
<p><b>Order 7 Rule 14 and Order 8 Rule 1-A</b> – Production of documents at later stage of trial – Approach expected of courts explained – Held, procedure is the handmaid of justice – Courts should take a lenient view upon such applications and lean towards substantial justice rather than relying upon procedural violation – Instantly, application for taking documents on record filed by defendant at the stage of defendant's evidence – Cogent reasons given explaining delay – Undoubtedly, documents were necessary for just decision of case hence, directed to be taken on record.</p> <p><b>आदेश 7 नियम 14 एवं आदेश 8 नियम 1-क</b> – विचारण के पश्चातवर्ती चरणों में दस्तावेजों की प्रस्तुति – न्यायालयों से अपेक्षित दृष्टिकोण समझाया गया – अभिनिर्धारित, प्रक्रिया न्याय की दासी है – न्यायालयों को ऐसे आवेदनों पर एक उदार दृष्टिकोण रखते हुए प्रक्रियात्मक उल्लंघन पर केन्द्रित होने के स्थान पर सारभूत न्याय की ओर झुकाव रखना चाहिए – हस्तगत मामले में प्रतिवादी साक्ष्य के प्रक्रम पर प्रतिवादी ने दस्तावेज अभिलेख पर लेने हेतु आवेदन प्रस्तुत किया – विलंब को स्पष्ट करने वाले ठोस कारण दर्शाए गए – निःसंदेह, दस्तावेज मामले के न्यायसंगत निराकरण के लिए आवश्यक थे, अतः दस्तावेजों को अभिलेख पर लेने हेतु निर्देशित किया गया।</p>	66*	67
<p><b>COMMERCIAL COURTS ACT, 2015</b>  <b>वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम, 2015</b></p>		
<p><b>Section 11</b> – See Sections 2 (1) (e), 9, 14, 34 and 36 of the Arbitration and Conciliation Act, 1996.</p> <p><b>धारा 11</b> – देखें माध्यस्थता एवं सुलह अधिनियम, 1996 की धाराएं 2 (1) (ड.) 9, 14, 34 एवं 36।</p>	60	63
<p><b>CONSTITUTION OF INDIA</b>  <b>भारत का संविधान</b></p>		
<p><b>Articles 20 (3) and 21</b> – See Sections 2(xxix), 41(2), 42(1), 43, 44, 48, 49, 53 and 67 of the N.D.P.S. ACT, 1985.</p> <p><b>अनुच्छेद 20 (3) एवं 21</b> – देखें स्वापक औषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985 की धाराएं 2(xxix), 41(2), 42(1), 43, 44, 48, 49, 53 एवं 67।</p>	101	117

ACT/ TOPIC	NOTE NO.	PAGE NO.
<b>Article 21</b> – See Section 167(2), Proviso (a), Explanation I (as inserted by Act 45 of 1978) of the Criminal Procedure Code, 1973.		
<b>अनुच्छेद 21</b> – देखें दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 167(2), परन्तुक (क) स्पष्टीकरण। (1978 के अधिनियम सं. 45 के द्वारा अन्तःस्थापित)।	76	87
<b>CRIMINAL PRACTICE:</b>		
<b>आपराधिक प्रथा:</b>		
– Order sheets – Facts mentioned in order sheets should be treated as prima facie true and its sanctity should not be doubted.		
– आदेश पत्रिकाएं – आदेश पत्रिकाओं में वर्णित तथ्यों को प्रथम दृष्टया सत्य माना जाना चाहिए एवं उसकी शुद्धता पर संदेह नहीं किया जाना चाहिए।	68*	69
– Reasonable doubt – It refers to the degree of certainty required of a court before it can make a legally valid determination of the guilt of an accused.		
– युक्तियुक्त संदेह – यह न्यायालय द्वारा एक अभियुक्त के अपराध की वैधानिक प्रमाणिकता का निर्धारण कर सकने के पूर्व की वांछित निष्चितता की मात्रा को संदर्भित करता है।	67	68
– See Sections 3, 8 and 9 of the Evidence Act, 1872.		
– देखें साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धाराएं 3, 8 एवं 9।	91	104
<b>CRIMINAL PROCEDURE CODE, 1973</b>		
<b>दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973</b>		
<b>Sections 4(2), 5, 173, 190 and 193</b> – See Sections 2(xxix), 41(2), 42(1), 43, 44, 48, 49, 53 and 67 of the N.D.P.S. ACT, 1985.		
<b>धाराएं 4(2), 5, 173, 190 एवं 193</b> – देखें स्वापक औषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985 की धाराएं 2(xxix), 41(2), 42(1), 43, 44, 48, 49, 53 एवं 67।	101	117
<b>Sections 26, 27, 177 to 184, 461 and 462</b> – Territorial jurisdiction of criminal courts – Determination of – Principles summarized.		
Irregularities as to territorial jurisdiction – Effect of – Explained – Clause (I) of Section 461 CrPC uses the term “offender” and not “offence” – “Offender” relates to competency of court to try, while “offence” is limited to territorial jurisdiction – Where controversy involves territorial jurisdiction, Section 462 CrPC comes into operation.		
Objection as to competency of criminal court and territorial jurisdiction – Held, depends upon facts to be established through evidence – Such objections may have to be taken before the court trying the offence and such court is bound to consider the same.		

ACT/ TOPIC	NOTE NO.	PAGE NO.
<p>धाराएं 26, 27, 177 से 184, 461 एवं 462 – आपराधिक न्यायालयों का प्रादेशिक क्षेत्राधिकार – निर्धारण – सिद्धांत समेकित किए गए।</p> <p>प्रादेशिक क्षेत्राधिकार में अनियमितताएं – प्रभाव – व्याख्या की गई – द.प्र.सं. की धारा 461 का खंड (ठ) में “अपराधी” शब्द का उपयोग हुआ है “अपराध” नहीं – “अपराधी” शब्द विचारण करने की न्यायालय की अधिकारिता से संबंधित है, जबकि “अपराध” प्रादेशिक क्षेत्राधिकार तक सीमित है – जहां विवाद प्रादेशिक क्षेत्राधिकार से संबंधित हो, वहां धारा 462 द.प्र.सं. लागू होगी।</p> <p>आपराधिक न्यायालय की अधिकारिता और प्रादेशिक क्षेत्राधिकार संबंधी आपत्ति – अभिनिर्धारित, साक्ष्य द्वारा स्थापित किए जाने वाले तथ्यों पर निर्भर करती है – इस प्रकार की आपत्तियां विचारण करने वाले न्यायालय के समक्ष उठाई जानी चाहिए और ऐसे न्यायालय उन आपत्तियों पर विचार करने के लिए बाध्य होंगे।</p>	69 (ii), 69 (iii) & (iv)	
<p><b>Sections 100 and 166</b> – Seizure during investigation – Non-compliance of statutory provisions contained u/s 100(4), 166(3) and 166(4) – Effect of – Held, non-compliance of aforesaid provisions alone may not be a ground to acquit the accused – But in a case where recovery is seriously doubted, non-compliance of aforesaid provisions play an important role.</p> <p>धाराएं 100 एवं 166 – अनुसंधान के दौरान जप्ती – धारा 100(4), 166(3) और 166(4) के वैधानिक प्रावधानों का पालन न करना – प्रभाव – अभिनिर्धारित, मात्र उपरोक्त प्रावधानों का पालन न करना, अभियुक्त की दोषमुक्ति का आधार नहीं हो सकता है – परन्तु ऐसे मामले में जहां जप्ती गंभीर संदेह युक्त हो, उपरोक्त प्रावधानों का अनुपालन न करना महत्वपूर्ण हो जाता है।</p>	70 (i)	74
<p><b>Sections 154, 156 and 157</b> – Investigation by an officer who himself is informant/complainant – Effect of – Merely because informant is the investigator, by that itself investigation will not suffer from unfairness or bias – Reference made to Constitution Bench answered. [<i>Mohan Lal v. State of Punjab, (2018) 17 SCC 627 and Varinder Kumar v. State of H.P., (2020) 3 SCC 321</i> overruled]</p> <p>धाराएं 154, 156 एवं 157 – ऐसे अधिकारी द्वारा किया गया अनुसंधान जो स्वयं सूचनाकर्ता/परिवादी हो – प्रभाव – मात्र इसलिए कि सूचनाकर्ता ही अनुसंधानकर्ता है, स्वयमेव अनुसंधान को अन्यायपूर्ण अथवा पक्षपातपूर्ण नहीं बना देगा – संविधान पीठ को प्रेषित संदर्भ निराकृत किया गया। [<i>मोहन लाल वि. पंजाब राज्य, (2018) 17 एससीसी 627 एवं वरिंदर कुमार वि. हिमाचल प्रदेश राज्य, (2020) 3 एससीसी 321</i> उलट दिए गए]</p>	103	120

ACT/ TOPIC	NOTE NO.	PAGE NO.
<b>Sections 154, 167, 173, 178 to 185, 190, 200 and 202</b> – See Sections 22, 22(1)(d), 23, 25, 27 32 and 36AC of the Drugs and Cosmetics Act, 1940.		
<b>धाराएं 154, 167, 173, 178 से 185, 190, 200 एवं 202</b> – देखें औषधि एवं प्रसाधन सामग्री अधिनियम, 1940 की धाराएं 22, 22(1)(घ), 23, 25, 27, 32 एवं 36कग।	<b>87</b>	<b>98</b>
<b>Sections 154 and 313</b> – Examination of accused – Failure to put circumstances against accused in his examination u/s 313 CrPC – Effect of – Such circumstances must be excluded from consideration by courts.		
Delay in lodging FIR – Effect of – Sexual offences – Prosecutrix and accused belonged to different religions – Both were known to each other – Letters exchanged between them show that their love for each other grew and matured over time – Their physical relations were not sporadic but, regular over the years – FIR was lodged at an opportune time of seven days prior to accused's marriage with another girl – All these facts raise serious doubt about truthfulness of allegations.		
<b>धाराएं 154 एवं 313</b> – अभियुक्त का परीक्षण – अभियुक्त के विरुद्ध आई परिस्थितियों को धारा 313 द.प्र.सं. के अधीन उसके परीक्षण में प्रस्तुत करने में विफलता – प्रभाव – अभिनिर्धारित, ऐसी परिस्थितियों पर न्यायालय द्वारा विचार नहीं किया जाना चाहिए।		
प्रथम सूचना रिपोर्ट लेख कराने में विलंब – प्रभाव – लैंगिक अपराध – अभियोक्त्री व अभियुक्त अलग-अलग धर्मों के थे – दोनों एक-दूसरे से परिचित थे – उनके बीच आदान-प्रदान किए गए पत्रों से प्रकट होता है कि एक-दूसरे के लिए उनका प्रेम समय के साथ बढ़ा और परिपक्व हुआ – शारीरिक संबंध छिटपुट नहीं थे, अपितु वर्षों तक नियमित थे – प्रथम सूचना रिपोर्ट एक उपयुक्त समय पर दर्ज कराई गई थी, जब सात दिवस उपरांत दूसरी लड़की से अभियुक्त का विवाह तय था – ये सभी तथ्य आरोपों की सत्यता पर गंभीर संदेह उत्पन्न करते हैं।	<b>71 (ii) &amp; (iii)</b>	<b>75</b>
<b>Sections 156 (3), 173 and 190</b> – Illegal sand mining – Power of Magistrate – Cognizance – Magistrate, u/s 156 (3) CrPC can direct the concerned SHO of the police station to register FIR for the offences under IPC and the MMDR Act, 1957 also – However, cognizance for the offence of MMDR Act can be taken on complaint filed by the authorized officer only.		
<b>धाराएं 156 (3), 173 एवं 190</b> – अवैध रेत खनन – मजिस्ट्रेट की शक्तियां – संज्ञान – मजिस्ट्रेट दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 156 (3) के अंतर्गत पुलिस स्टेशन के संबंधित भारसाधक अधिकारी को भारतीय दण्ड संहिता के साथ खान और खनिज (विकास और विनियमन) अधिनियम, 1957 के अपराधों हेतु भी प्रथम सूचना रिपोर्ट पंजीबद्ध करने हेतु निर्देशित कर सकता है यद्यपि खान और खनिज (विकास और विनियमन) अधिनियम, 1957 के अपराधों का संज्ञान केवल प्राधिकृत अधिकारी द्वारा प्रस्तुत परिवाद पर ही लिया जा सकता है।	<b>72</b>	<b>80</b>
<b>Section 162</b> – See Sections 3, 8 and 9 of the Evidence Act, 1872.		
<b>धारा 162</b> – देखें साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धाराएं 3, 8 एवं 9।	<b>91</b>	<b>104</b>

ACT/ TOPIC	NOTE NO.	PAGE NO.
<p><b>Sections 162, 227 and 228</b> – (i) Framing of charge – Requirement of – Court must be satisfied that with the material available, a case is made out for the accused to stand trial – Material must be such that can be translated into evidence at the stage of trial.</p> <p>(ii) Bar under Section 162 CrPC – Admission made in the course of investigation to a Police Officer will not be admissible u/s 162 of the CrPC.</p> <p><b>धाराएं 162, 227 एवं 228</b> – (i) आरोप की विरचना – आवश्यकता – न्यायालय को उपलब्ध विषय-वस्तु के आधार पर संतुष्ट होना चाहिए कि अभियुक्त का विचारण किए जाने के लिए प्रकरण बनता है – सामग्री निश्चित रूप से ऐसी हो जिसे विचारण के स्तर पर साक्ष्य में परिवर्तित किया जा सके।</p> <p>(ii) दं.प्र.सं. की धारा 162 के अंतर्गत प्रतिबंध – अन्वेषण के दौरान पुलिस अधिकारी से की गई स्वीकृति धारा 162 दं.प्र.सं. के अंतर्गत ग्राह्य नहीं होगी।</p> <p><b>Sections 164 and 307</b> – Substantive evidence – Is the evidence rendered in Court – It would be impermissible to convict the accused on the basis of the statement made u/s 164 CrPC.</p> <p><b>धाराएं 164 एवं 307</b> – तात्विक साक्ष्य – न्यायालय में दिया गया साक्ष्य ही है – दं.प्र.सं. की धारा 164 के तहत किये गये कथन के आधार पर अभियुक्त को दोषी ठहराना अनुमत नहीं होगा।</p> <p><b>Section 167</b> – (i) Investigation – Extension of time of investigation from 90 days to 180 days under Special Statutes (UAPA, 1967) – Competency – Held, Special Court constituted under NIA Act, 2008 or in absence thereof, Court of Sessions alone is competent to extend time – Magistrate has no jurisdiction to extend such time period.</p> <p>(ii) Default bail – Indefeasible right of accused to be released on bail after expiry of stipulated period is not affected if application is not disposed of or is wrongly disposed of.</p> <p><b>धारा 167</b> – (i) अनुसंधान – विशेष विधि (यूएपीए, 1967) के अंतर्गत अनुसंधान का समय 90 दिवस से 180 दिवस तक बढ़ाना – सक्षमता – अभिनिर्धारित, राष्ट्रीय अनुसंधान एजेन्सी अधिनियम, 2008 के अधीन गठित विशेष न्यायालय अथवा उसके अभाव में, सत्र न्यायालय ही समय बढ़ाने के लिए सक्षम है – मजिस्ट्रेट को ऐसी समयावधि बढ़ाने की कोई अधिकारिता नहीं है।</p> <p>(ii) व्यक्तिगत जमानत – निर्धारित अवधि की समाप्ति के बाद जमानत पर रिहा किए जाने का अभियुक्त का अजेय अधिकार आवेदन का निराकरण नहीं किए जाने अथवा आवेदन त्रुटिपूर्ण तरीके से निराकृत किए जाने से प्रभावित नहीं होता है।</p> <p><b>Section 167 (2)</b> – (i) Default bail – Accrual of right – Only requirement for getting default bail u/s 167 (2) CrPC is that the investigation was not completed and no chargesheet is filed within 60/90 days.</p> <p>(ii) Imposing of condition – Whether necessary? Held, No – High Court while releasing the appellant on default bail has imposed the condition to deposit ₹ 8,00,000/- – Imposing condition of depositing the alleged amount while releasing the accused would frustrate the very object and purpose of default bail.</p>	73	82
	90 (i)	101
	74	83

ACT/ TOPIC	NOTE NO.	PAGE NO.
<p><b>धारा 167 (2) – (i) व्यतिक्रम जमानत – अधिकार का उत्पन्न होना – व्यतिक्रम जमानत प्राप्त करने के लिए आवश्यकता केवल यह है कि धारा 167(2) के अंतर्गत 60 अथवा 90 दिवस में अन्वेषण पूर्ण नहीं हुआ हो और न ही अभियोग पत्र प्रस्तुत किया गया हो।</b></p> <p><b>(ii) शर्त अधिरोपित किया जाना – क्या आवश्यक है? अभिनिर्धारित, नहीं – उच्च न्यायालय द्वारा अपीलार्थी को व्यतिक्रम जमानत पर रिहा किए जाते समय ₹ 8,00,000 /– रुपये निक्षिप्त करने की शर्त अधिरोपित की गई – अभियुक्त को जमानत पर रिहा किए जाते समय राशि निक्षिप्त करने की कथित शर्त अधिरोपित करना, अनिवार्य जमानत के उद्देश्य एवं प्रयोजन को निरुत्साहित करना होगा।</b></p>	75	86
<p><b>Section 167 (2), Proviso (a), Explanation I (as inserted by Act 45 of 1978) – (i) Default bail – Indefeasible right availing of – Once the accused files an application for bail u/s 167 (2) CrPC r/w/s 36 A (4) NDPS Act upon expiry of 180 days or the extended period, he is deemed to have 'availed of' or enforced his rights to be released on default bail.</b></p> <p><b>(ii) Right of default bail – When will be extinguished? If the accused fails to apply for default bail and subsequently chargesheet, additional complaint or application for seeking extension of time is filed, the right of default bail would be extinguished.</b></p> <p><b>(iii) Purpose of issuance of notice – Its only purpose is that Public Prosecutor can satisfy the court that the prosecution has already obtained an order of extension of time or challan has been filed or prescribed period has not expired.</b></p> <p><b>धारा 167 (2), परन्तु (क) स्पष्टीकरण। (1978 के अधिनियम सं. 45 के द्वारा यथा अन्तःस्थापित) – (i) व्यतिक्रम जमानत – अजेय अधिकार का प्रयोग करना – एक बार अभियुक्त धारा 167 (2) द.प्र.सं. सहपठित धारा 36क (4) एनडीपीएस एक्ट के तहत 180 दिनों की समाप्ति के बाद अथवा विस्तारित समय अवधि के पश्चात् आवेदन प्रस्तुत कर देता है तो यह माना जावेगा कि उसके द्वारा व्यतिक्रम जमानत पर रिहा होने के अधिकार का उपयोग अथवा प्रयोग कर लिया गया है।</b></p> <p><b>(ii) व्यतिक्रम जमानत का अधिकार – कब निर्वापित होगा? यदि अभियुक्त अनिवार्य जमानत के लिए आवेदन करने में असफल रहता है और इसके बाद अभियोग पत्र, अतिरिक्त परिवाद या समय को विस्तारित करने हेतु प्रार्थना पत्र प्रस्तुत किया जाता है, तब व्यतिकारी जमानत का अधिकार निर्वापित होगा।</b></p> <p><b>(iii) सूचना पत्र जारी किये जाने का प्रयोजन – इसका मात्र यह उद्देश्य है कि लोक अभियोजक न्यायालय को संतुष्ट करा सके कि अभियोजन पूर्व से ही समय को विस्तारित करने का आदेश प्राप्त कर चुका है अथवा अभियोग पत्र प्रस्तुत किया जा चुका है अथवा निर्धारित समय पूर्ण नहीं हुआ है।</b></p>	76	87

ACT/ TOPIC	NOTE NO.	PAGE NO.
<p><b>Sections 167 (2), 436-A, 437 and 439</b> – (i) Default bail – Duty of Magistrate – Guidelines issued – Magistrate is duty bound to bring to the notice of the undertrial that he has a right to statutory bail – Further, in the event of indigency and financial breakdown of accused, it is the duty of Magistrate to bring it to the notice of DLSA for assistance.</p> <p>(ii) Bail – Proviso to section 436A Cr.P.C. gives extraordinary power to the Court and it is the duty of the court to examine the applicability of this section in each and every case.</p> <p><b>धाराएं 167 (2), 436-क, 437 एवं 439</b> – (i) व्यक्तिगत जमानत – मजिस्ट्रेट का कर्तव्य – दिशानिर्देश जारी किए गए – मजिस्ट्रेट विचाराधीन को यह संसूचित करने के लिए कर्तव्यबद्ध है कि उसे विधितः जमानत प्राप्त करने का अधिकार है – यह भी, कि अभियुक्त के निर्धन होने अथवा आर्थिक रूप से पिछड़े होने की दशा में सहायता हेतु जिला विधिक सेवा प्राधिकरण को सूचित करना मजिस्ट्रेट का कर्तव्य है।</p> <p>(ii) जमानत – धारा 436-क दं.प्र.सं. का परन्तुक न्यायालय को असाधारण शक्तियाँ प्रदान करता है और प्रत्येक प्रकरण में इस प्रावधान की प्रयोज्यता का परीक्षण करना न्यायालय का कर्तव्य है।</p>	77	89
<p><b>Sections 173 and 190</b> – Further investigation – Closure report filed on the basis that death was homicidal but there was no clue of offenders – Closure report lacks bonafide – Setting aside closure report, de novo investigation directed by the Apex Court.</p> <p><b>धाराएं 173 एवं 190</b> – आगामी अन्वेषण – खात्मा प्रतिवेदन इस आधार पर प्रस्तुत किया गया कि मृत्यु मानव-वध स्वरूप की थी परंतु अभियुक्तगण के संबंध में कोई सुराग नहीं मिला – खात्मा प्रतिवेदन में सद्भावना का अभाव – उच्चतम न्यायालय द्वारा खात्मा प्रतिवेदन अपास्त किया गया – नवीन अन्वेषण निर्देशित।</p> <p><b>Section 190</b> – (i) Closure Report – Notice – Must be issued by the Court to the complainant whenever closure report is filed.</p> <p>(ii) Notice – Proposed accused should be noticed whenever complainant challenges order of dismissal of complaint.</p> <p><b>धारा 190</b> – (1) खात्मा प्रतिवेदन – सूचना पत्र – खात्मा प्रतिवेदन प्रस्तुत होने पर न्यायालय द्वारा शिकायतकर्ता को सूचना पत्र अवश्यमेव जारी करना चाहिये।</p> <p>(2) सूचना पत्र – शिकायतकर्ता द्वारा परिवाद निरस्तगी के आदेश को चुनौती देने पर प्रस्तावित अभियुक्त को सूचना दिया जाना चाहिये।</p>	78	90
<p><b>Section 195</b> – There is no bar u/s 195 of CrPC in respect of registration of FIR – What is barred u/s 195 of CrPC is that after investigating an offence u/s 188 of IPC, Police Officer cannot file a final report in Court and Court cannot take cognizance on that final report, as at that stage bar contained in Section 195 of CrPC comes into operation.</p> <p><b>धारा 195</b> – धारा 195 दं.प्र.सं. के अन्तर्गत प्रथम सूचना रिपोर्ट के पंजीयन पर कोई रोक नहीं है – धारा 195 दं.प्र.सं. के अन्तर्गत रोक यह है कि धारा 188 भा.दं.सं. के अन्तर्गत अनुसंधान के</p>	79	92



ACT/ TOPIC	NOTE NO.	PAGE NO.
उपरांत पुलिस अधिकारी न्यायालय में अंतिम प्रतिवेदन प्रस्तुत नहीं कर सकता है और न्यायालय उक्त अंतिम प्रतिवेदन के आधार पर संज्ञान नहीं ले सकता है क्योंकि उक्त चरण पर धारा 195 द.प्र.सं. में उल्लेखित बाधा क्रियाशील हो जाती है।	93	108
<b>Sections 204 (4) and 378 (4)</b> – Dismissal of complaint – Appeal or revision – Appeal u/s 378 (4) is not maintainable in case of dismissal of private complaint for non-payment of process fee as such order does not amount to acquittal of accused.		
<b>धाराएं 204 (4) एवं 378 (4)</b> – परिवाद का खारिज किया जाना – अपील अथवा पुनरीक्षण – आदेशिका फीस का भुगतान न होने के कारण निजी परिवाद खारिज हो जाने के प्रकरण के संबंध में धारा 378(4) के अंतर्गत अपील पोषणीय नहीं है क्योंकि ऐसे आदेश का परिणाम अभियुक्त की दोषमुक्ति नहीं होता है।	80*	93
<b>Section 311</b> – Recalling of witness – The person, whose evidence appears to be essential for the just decision of the case, may be recalled by the court at any stage.		
<b>धारा 311</b> – साक्षी को पुनः बुलाया जाना – वह व्यक्ति, जिसकी साक्ष्य मामले के न्यायसंगत विनिश्चय हेतु आवश्यक प्रतीत होती है, न्यायालय द्वारा किसी भी प्रक्रम पर पुनः साक्ष्य हेतु बुलाया जा सकता है।	81	93
<b>Section 313</b> – See Sections 118, 138 and 139 of the Negotiable Instruments Act, 1881.		
<b>धारा 313</b> – देखें परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 की धाराएं 118, 138 एवं 139।	104	123
<b>Section 378</b> – Appeal against acquittal – Power – There is no difference of power, scope, jurisdiction or limitation under the CrPC between appeal against judgments of conviction or of acquittal – Appellate Court can reconsider questions of both law and fact and re-appreciate evidence on record.		
<b>धारा 378</b> – दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील – शक्ति – द.प्र.सं. के अंतर्गत दोषसिद्धि अथवा दोषमुक्ति के निर्णय के विरुद्ध अपील में शक्ति, विस्तार, क्षेत्राधिकार या परिसीमा का कोई अंतर नहीं है – अपीलीय न्यायालय विधि एवं तथ्य दोनों प्रश्नों को पुनर्विचारित कर सकता है और अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य को पुनर्मूल्यांकित कर सकता है।	102 (i)	118
<b>Section 389</b> – Stay of execution of sentence – Power of Appellate Court – While considering application u/s 389 CrPC to release a convict on bail, it is not open to a court to re-asses or re-analyze the evidence and take a different view.		
<b>धारा 389</b> – दण्डादेश के निष्पादन का स्थगन – अपीलीय न्यायालय की शक्ति – धारा 389, द.प्र.सं. के तहत दोषसिद्ध को जमानत पर रिहा किये जाने संबंधी आवेदन पर विचार किए जाते समय न्यायालय के लिए यह अनुमत नहीं है कि वह साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन अथवा पुनर्विश्लेषण कर भिन्न दृष्टिकोण अपनाये।	94	111

ACT/ TOPIC	NOTE NO.	PAGE NO.
<p><b>Sections 437 and 439</b> – (i) Bail – Conditions that can be imposed while allowing bail applications – Court has discretion to impose “any condition” which must be exercised judiciously and compassionately.</p> <p>(ii) Object of imposing conditions is to facilitate the administration of justice, secure the presence of accused and to ensure that liberty of accused is not misused – However, liberty should not become illusory by imposition of conditions which are disproportionate to the above objectives.</p>		
<p><b>धाराएं 437 एवं 439</b> – (i) जमानत – जमानत आवेदन स्वीकार करते समय लगाई जाने योग्य शर्तें – न्यायालय को “कोई भी शर्त” अधिरोपित करने का विवेकाधिकार है, परन्तु ऐसे विवेकाधिकार का प्रयोग न्यायसंगत और सहानुभूतिपूर्वक किया जाना चाहिए।</p> <p>(ii) शर्तें अधिरोपित करने का उद्देश्य – न्याय प्रशासन को सुविधाजनक बनाना, अभियुक्त की उपस्थिति सुनिश्चित करना और यह सुनिश्चित करना है कि अभियुक्त द्वारा स्वतंत्रता का दुरुपयोग नहीं किया जाएगा – तथापि, उपरोक्त उद्देश्यों से अनुपातहीन शर्तें अधिरोपित कर ऐसी स्वतंत्रता भ्रमित या आभासी नहीं बना देनी चाहिए।</p>	82	94
<p><b>Section 438</b> – Anticipatory bail – Maintainability of – Anticipatory bail application is maintainable even if it is filed by an absconding accused.</p>		
<p><b>धारा 438</b> – अग्रिम जमानत – पोषणीयता किसी फरार अभियुक्त द्वारा भी प्रस्तुत अग्रिम जमानत का आवेदन भी पोषणीय होता है।</p>	83	96
<p><b>Sections 438</b> – Anticipatory bail – When case diary and status report clearly indicate that the accused is absconding and not co-operating with the investigation, successive anticipatory bail application ought not to be entertained – The specious reason of change in circumstances cannot be invoked for successive anticipatory bail applications, once it is rejected by a speaking order and that too by the same judge.</p>		
<p><b>धारा 438</b> – अग्रिम जमानत – जब केस डायरी तथा प्रतिवेदन से स्पष्ट रूप से यह दर्शित होता है कि अभियुक्त फरार है और अनुसंधान में सहयोग नहीं कर रहा है तब उत्तरवर्ती अग्रिम जमानत आवेदन पर विचार नहीं करना चाहिए – यदि उसी न्यायाधीश द्वारा विस्तृत आदेश करते हुए एक बार अग्रिम जमानत का आवेदन खारिज कर दिया गया है तब परिस्थितियों में परिवर्तन का विशिष्ट कारण उत्तरवर्ती अग्रिम जमानत आवेदन के लिए लागू नहीं होता है।</p>	84*	96
<p><b>Section 439 (2)</b> – Cancellation of bail – Correctness of order granting bail is subject to assessment by an appellate or superior Court and it may be set aside on the ground that Court granting bail did not consider material facts or crucial circumstances – Setting aside of an unjustified, illegal or perverse order of granting bail is distinct from cancellation of bail on ground of supervening misconduct of accused or because some new facts have emerged, requiring cancellation.</p>		
<p><b>धारा 439 (2)</b> – जमानत की निरस्ती – जमानत स्वीकार करने के आदेश की शुद्धता अपीलीय या वरिष्ठ न्यायालय द्वारा मूल्यांकन के अधीन है और उसे इस आधार पर अपास्त किया जा सकता है कि न्यायालय ने जमानत स्वीकार करने में महत्वपूर्ण सामग्री या परिस्थितियों पर विचार नहीं</p>		

ACT/ TOPIC	NOTE NO.	PAGE NO.
किया है – जमानत स्वीकार करने का एक अनुचित, अवैध या प्रतिकूल आदेश अपास्त करना अभियुक्त के कदाचरण के आधार पर या कुछ नए तथ्य सामने आने से निरस्ती आवश्यक होने से जमानत की निरस्ति से भिन्न हैं।	85*	97
<b>Sections 451 and 457</b> – Release of seized vehicle – Jurisdiction of Court – Magistrate can release vehicle seized by police u/s 451 CrPC – The ouster of jurisdiction of the Criminal Court would only occur if the proceeding of forfeiture is completed under Rule 53 of the M.P. Minor Mineral Rules, 1996.		
<b>धाराएं 451 एवं 457</b> – जप्त वाहन की उन्मुक्ति – न्यायालय की अधिकारिता – पुलिस द्वारा जप्त वाहन को दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 451 के अंतर्गत मजिस्ट्रेट उन्मुक्त कर सकता है – आपराधिक न्यायालय का क्षेत्राधिकार केवल तभी वर्जित होगा यदि मध्यप्रदेश गौण खनिज नियम, 1996 के नियम 53 के अंतर्गत समपहरण की कार्यवाही पूर्ण हो जाये।	86	97
<b>CRIMINAL TRIAL:</b>		
<b>आपराधिक विचारण:</b>		
– Motive; absence of – Cases based on circumstantial evidence – Effect of – Absence of motive cannot be a ground to reject the prosecution case – However, absence of motive in a case based on circumstantial evidence is a factor that weighs in favour of the accused.		
– हेतुक का अभाव – परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित मामले – प्रभाव – हेतुक का अभाव अभियोजन के मामले को खारिज करने का आधार नहीं हो सकता है – तथापि, परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित मामलों में हेतुक का अभाव एक ऐसा कारक है जो अभियुक्त के पक्ष में जाता है।	70 (ii)	74
– See Sections 154, 156 and 157 of the Criminal Procedure Code, 1973.		
– देखें दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धाराएं 154, 156 एवं 157।	103	120
– See Sections 3, 8 and 9 of the Evidence Act, 1872.		
– देखें साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धाराएं 3, 8 एवं 9।	91	104
– See Section 20 of the Scheduled Castes and Scheduled Tribes (Prevention of Atrocities) Act, 1989.		
– देखें अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 की धारा 20।	109	129
<b>DOWRY PROHIBITION ACT, 1961</b>		
<b>दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961</b>		
<b>Sections 3 and 4</b> – See Section 389 of the Criminal Procedure Code, 1973.		
<b>धाराएं 3 एवं 4</b> – देखें दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 389।	94	111

ACT/ TOPIC	NOTE NO.	PAGE NO.
------------	----------	----------

## DRUGS AND COSMETICS ACT, 1940

### औषधि एवं प्रसाधन सामग्री अधिनियम, 1940

**Sections 22, 22(1)(d), 23, 25, 27, 32 and 36AC** – Drugs and Cosmetics Act – Trial of offences – Competency – In view of Section 32 of the Act, Police Officer cannot prosecute offenders in regard to such offences – Only persons mentioned in Section 32 are entitled to do the same – Directions issued by the Apex Court.

**धाराएं 22, 22(1)(घ), 23, 25, 27, 32 एवं 36कग** – औषधि एवं प्रसाधन सामग्री अधिनियम – अपराधों का विचारण – सक्षमता – अधिनियम की धारा 32 के आलोक में पुलिस अधिकारी ऐसे अपराधों को अभियोजित नहीं कर सकता है – केवल वे ही व्यक्ति जो धारा 32 में वर्णित हैं ऐसा करने के लिए अधिकृत हैं – उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्देश जारी किए गए।

87 98

## DRUGS AND COSMETICS RULES, 1945

### औषधि एवं प्रसाधन सामग्री नियम, 1945

**Rules 51, 51(4), 51(5) and 52** – See Sections 22, 22(1)(d), 23, 25, 27, 32 and 36AC of the Drugs and Cosmetics Act, 1940.

**नियम 51, 51(4), 51(5) एवं 52** – देखें औषधि एवं प्रसाधन सामग्री अधिनियम, 1940 की धाराएं 22, 22(1)(घ), 23, 25, 27, 32 एवं 36कग।

87 98

## EVIDENCE ACT, 1872

### साक्ष्य अधिनियम, 1872

**Sections 3, 8 and 9** – (i) Forensic evidence – Withholding of – Effect – Held, when vital forensic evidence is kept away, an adverse inference will have to be drawn against the prosecution.

(ii) Test identification parade – Evidentiary value of – Effect of presence of police – Held, test identification evidence is not a substantive piece of evidence, but can only be used for corroboration of court statements – Further held, when identifications are done in the presence of police, the resultant communication of identifiers tantamount to statements made to police officers in the course of investigation and fall within the ban of Section 162 CrPC.

(iii) Conduct of witness – Value of – Held, unnatural conduct of witness make them unreliable.

**धाराएं 3, 8 एवं 9** – (i) फोरेंसिक साक्ष्य – प्रस्तुत न करना – प्रभाव – अभिनिर्धारित, जब महत्वपूर्ण फोरेंसिक साक्ष्य को प्रस्तुत नहीं किया जाता है, तो अभियोजन के विरुद्ध प्रतिकूल निष्कर्ष निकालना होगा।

(ii) पहचान परेड – साक्ष्यिक मूल्य – पुलिस की उपस्थिति का प्रभाव – अभिनिर्धारित, पहचान परेड सारवान् साक्ष्य नहीं है, अपितु इसका उपयोग मात्र न्यायालयीन साक्ष्य की पुष्टि के लिए किया जा सकता है – आगे अभिनिर्धारित, जब पहचान कार्यवाही पुलिस की उपस्थिति में की

ACT/ TOPIC	NOTE NO.	PAGE NO.
जाती है तो पहचान करने वाले व्यक्तियों द्वारा दी गई परिणामी सूचना अनुसंधान के दौरान पुलिस अधिकारियों को दिए गए बयान का प्रभाव रखेगी और द.प्र.सं. की धारा 162 के प्रतिबंध के अधीन होगी।		
(iii) साक्षी का आचरण – मूल्य – अभिनिर्धारित, साक्षी का अप्राकृतिक आचरण उसे अविश्वसनीय बनाता है।	91	104
<b>Sections 3, 21, 118 and 154</b> – Hostile witness – Credibility – Although witness was declared hostile by the prosecution – During cross-examination, he admits having duly perused the contents of these documents before signing them and was not under any form of police pressure – Witness statement broadly corroborates and strengthens the seizure of contraband substance from the possession of the appellant.		
<b>धाराएं 3, 21, 118 एवं 154</b> – पक्षद्रोही साक्षी – विश्वसनीयता – यद्यपि, अभियोजन द्वारा साक्षी को पक्षद्रोही घोषित किया गया – प्रतिपरीक्षण में वह स्वीकार करता है कि हस्ताक्षर करने से पूर्व उसने दस्तावेजों की अंतर्वस्तु को सम्यक् रूप से परीशीलन कर लिया था और वह किसी भी प्रकार के पुलिस दबाव के अधीन नहीं रहा था – साक्षी के कथन मोटे तौर से समर्थित एवं अपीलार्थी के अधिपत्य से मादक पदार्थ की जप्ती को प्रबलता प्रदान करते हैं।	102 (ii)	118
<b>Sections 3, 59, 60, 106, 114 and 133</b> – Evidence of accomplices – Accomplices are credible witnesses when the entire circumstance is borne in mind – Test is whether it is safe to convict the accused believing such witnesses.		
<b>धाराएं 3, 59, 60, 106, 114 एवं 133</b> – सहअपराधी की साक्ष्य – सहअपराधी विश्वसनीय साक्षी हैं जबकि संपूर्ण परिस्थितियों को ध्यान में रखा जावे – परीक्षण यह है कि क्या ऐसे साक्षियों पर विश्वास कर अभियुक्त को दोषसिद्ध किया जाना सुरक्षित है।	90 (iii)	101
<b>Sections 3 and 114</b> – See Sections 154, 156 and 157 of the Criminal Procedure Code, 1973.		
<b>धाराएं 3 एवं 114</b> – देखें दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धाराएं 154, 156 एवं 157।	103	120
<b>Sections 3 and 154</b> – Hostile witness – Hostility of independent witnesses does not by itself discredit evidence of the Investigating Officer unless there is something in cross-examination of Investigating Officer to disbelieve him.		
<b>धाराएं 3 एवं 154</b> – पक्षद्रोही साक्षी – स्वतन्त्र साक्षियों की पक्ष द्रोहिता मात्र अपने आप में विवेचना अधिकारी की साक्ष्य को अविश्वसनीय नहीं बनाती है जब तक कि स्वयं विवेचना अधिकारी के प्रतिपरीक्षण में उस पर अविश्वास किये जाने का कोई कारण ना हो।	88*	100
<b>Sections 8, 9 and 45</b> – (i) Identification parade – Evidentiary value – Finding of guilt cannot be based purely on refusal of the accused to undergo an identification parade.		
(ii) Non-examination of ballistic expert – Effect – There is no inflexible rule which requires the prosecution to examine a ballistics examiner in every case where a murder is alleged to have been caused with the use of a fire arm.		

ACT/ TOPIC	NOTE NO.	PAGE NO.
<p>धाराएं 8, 9 एवं 45 – (i) पहचान परेड – साक्ष्यिक मूल्य– दोषसिद्धि विशुद्ध रूप से इस पर अवधारित नहीं की जा सकती कि अभियुक्त ने पहचान परेड का सामना करने से इंकार कर दिया।</p> <p>(ii) प्राक्षेपिकी विशेषज्ञ का परीक्षण न कराना – प्रभाव – जहां हत्या आग्नेय अस्त्र के प्रयोग से की जाना आरोपित हो, वहां ऐसा कोई कठोर नियम नहीं है कि प्राक्षेपिकी परीक्षक का परीक्षण कराना अभियोजन के लिए प्रत्येक मामले में आवश्यक हो।</p> <p><b>Sections 8, 45, 59 and 134</b> – (i) Interested eye-witness – Sole testimony – Evidence of sole eye-witness replete with contradictions and omissions – Being an interested witness, such evidence cannot be made basis for conviction.</p> <p>(ii) Finding of FSL Report – Evidentiary value – FSL report loses its evidentiary value if the accused persons have not been confronted with the finding.</p> <p>धाराएं 8, 45, 59 एवं 134 – (i) हितबद्ध प्रत्यक्ष साक्षी – एकल साक्ष्य – एकमात्र प्रत्यक्षदर्शी साक्षी की साक्ष्य जो खंडन एवं लोप से परिपूर्ण है और ऐसा साक्षी हितबद्ध भी है – ऐसी साक्ष्य को दोषसिद्धि का आधार नहीं बनाया जा सकता।</p> <p>(ii) एफ.एस.एल. प्रतिवेदन का निष्कर्ष – साक्ष्यिक मूल्य – अभियुक्तगण परीक्षण में अभियुक्तगणों का एफ.एस.एल. प्रतिवेदन के निष्कर्ष से सामना नहीं कराया गया – एफ.एस.एल. प्रतिवेदन उसका साक्ष्यिक मूल्य खो देता है।</p> <p><b>Section 25</b> – See Sections 2(xxix), 41(2), 42(1), 43, 44, 48, 49, 53 and 67 of the N.D.P.S. Act, 1985.</p> <p>धारा 25 – देखें स्वापक औषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985 की धाराएं 2(xxix), 41(2), 42(1), 43, 44, 48, 49, 53 एवं 67।</p> <p><b>Sections 25 and 26</b> – See Sections 162, 227 and 228 of the Criminal Procedure Code, 1973.</p> <p>धाराएं 25 एवं 26 – देखें दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धाराएं 162, 227 एवं 228।</p>	<p>89</p> <p>101</p> <p>92</p> <p>106</p> <p>101</p> <p>117</p> <p>73</p> <p>82</p>	<p>101</p> <p>106</p> <p>117</p> <p>117</p> <p>117</p> <p>117</p> <p>117</p> <p>117</p>
<p><b>FOOD SAFETY AND STANDARDS ACT, 2006</b></p> <p><b>खाद्य सुरक्षा एवं मानक अधिनियम, 2006</b></p> <p><b>Section 97</b> – See Sections 2, 7 and 16 of the Prevention of Food Adulteration Act, 1954.</p> <p>धारा 97 – देखें खाद्य अपमिश्रण निवारण अधिनियम, 1954 की धाराएं 2, 7 एवं 16।</p>		
	107*	127
<p><b>GENERAL CLAUSES ACT, 1897</b></p> <p><b>साधारण खण्ड अधिनियम, 1897</b></p> <p><b>Section 6</b> – See Sections 2, 7 and 16 of the Prevention of Food Adulteration Act, 1954.</p> <p>धारा 6 – देखें खाद्य अपमिश्रण निवारण अधिनियम, 1954 की धाराएं 2, 7 एवं 16।</p>		
	107*	127
JOTI JOURNAL - APRIL 2021		XVI

ACT/ TOPIC	NOTE NO.	PAGE NO.
<b>INDIAN PENAL CODE, 1860</b>		
<b>भारतीय दण्ड संहिता, 1860</b>		
<b>Sections 34, 109, 120B, 149, 302, 364, 365 and 387</b> – Abduction and murder – Abduction followed by murder in appropriate cases can enable a court to presume that the abductor is the murderer.		
<b>धाराएं 34, 109, 120ख, 149, 302, 364, 365 एवं 387</b> – अपहरण एवं हत्या – उपयुक्त मामलों में प्रकरण में अपहरण के बाद हुई हत्या न्यायालय को यह उपधारणा करने के लिए समर्थ बनाती है कि अपहरणकर्ता ही हत्यारा है।	<b>90 (ii)</b>	<b>101</b>
<b>Sections 34 and 302</b> – See Sections 3, 8 and 9 of the Evidence Act, 1872.		
<b>धाराएं 34 एवं 302</b> – देखें साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धाराएं 3, 8 एवं 9।	<b>91</b>	<b>104</b>
<b>Sections 90 and 376</b> – Consent to physical relationship – Whether given under misconception of fact or fraudulent promise of marriage – Determination of – Held, misconception of fact u/s 90 IPC must be in proximity of time of occurrence.		
<b>धाराएं 90 एवं 376</b> – शारीरिक संबंध के लिए सहमति – तथ्य के भ्रम में अथवा विवाह के कपटपूर्ण वचन के अधीन दी गई – निर्धारण – अभिनिर्धारित, भा.द.सं. की धारा 90 के अधीन तथ्य का भ्रम घटना के संनििकट में होना चाहिए।	<b>71 (iv)</b>	<b>75</b>
<b>Sections 149 and 302</b> – See Sections 8, 45, 59 and 134 of the Evidence Act, 1872.		
<b>धाराएं 149 एवं 302</b> – देखें साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धाराएं 8, 45, 59 एवं 134।	<b>92</b>	<b>106</b>
<b>Section 188</b> – See Section 195 of the Criminal Procedure Code, 1973.		
<b>धारा 188</b> – देखें दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 195।	<b>93</b>	<b>108</b>
<b>Section 302</b> – See Sections 8, 9 and 45 of the Evidence Act, 1872		
<b>धारा 302</b> – देखें साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धाराएं 8, 9 एवं 45।	<b>89</b>	<b>101</b>
<b>Section 302</b> – See Sections 100 and 166 of the Criminal Procedure Code, 1973 and Criminal Trial.		
<b>धारा 302</b> – देखें दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धाराएं 100 एवं 166 तथा आपराधिक विचारण।	<b>70</b>	<b>74</b>
<b>Section 302</b> – See Sections 173 and 190 of the Criminal Procedure Code, 1973.		
<b>धारा 302</b> – देखें दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धाराएं 173 एवं 190।	<b>78</b>	<b>90</b>
<b>Sections 304B, 406 and 498A</b> – See Section 389 of the Criminal Procedure Code, 1973.		
<b>धाराएं 304ख, 406 एवं 498क</b> – देखें दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 389।	<b>94</b>	<b>111</b>
<b>Section 376</b> – Compromise – When consent of minor is immaterial in relation to an offence, no compromise can be accepted despite her consent.		

ACT/ TOPIC	NOTE NO.	PAGE NO.
धारा 376 – समझौता – जब किसी अपराध के संबंध में अप्राप्तवय की सहमति तत्त्वहीन है तब कोई समझौता उसकी सहमति के पश्चात् भी स्वीकार नहीं किया जा सकता।	95	111
Section 379 – See Sections 451 and 457 of the Criminal Procedure Code, 1973.		
धारा 379 – देखें दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धाराएं 451 एवं 457।	86	97
Sections 379 and 411 – See Sections 156 (3), 173 and 190 of the Criminal Procedure Code, 1973.		
धाराएं 379 एवं 411 – देखें दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धाराएं 156 (3), 173 एवं 190।	72	80
Sections 489-B and 489-C – See Sections 162, 227 and 228 of the Criminal Procedure Code, 1973.		
धाराएं 489-ख एवं 489-ग – देखें दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धाराएं 162, 227 एवं 228।	73	82
<b>INTERPRETATION OF STATUTES:</b>		
<b>संविधियों का निर्वचन:</b>		
– See Sections 2(xxix), 41(2), 42(1), 43, 44, 48, 49, 53 and 67 of the N.D.P.S. ACT, 1985.		
– देखें स्वापक औशधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985 की धाराएं 2(xxix), 41(2), 42(1), 43, 44, 48, 49, 53 एवं 67।	101	117
<b>M.P. MINERALS (PREVENTION OF ILLEGAL MINING, TRANSPORTATION AND STORAGE) RULES, 2006</b>		
<b>मध्यप्रदेश खनिज (अवैध खनन, परिवहन और भण्डारण का निवारण) नियम, 2006</b>		
Rule 18 – See Sections 156 (3), 173 and 190 of the Criminal Procedure Code, 1973.		
नियम 18 – देखें दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धाराएं 156 (3), 173 एवं 190।	72	80
<b>M.P. MINOR MINERAL RULES, 1996</b>		
<b>मध्यप्रदेश गौण खनिज नियम, 1996</b>		
Rule 53 – See Sections 451 and 457 of the Criminal Procedure Code, 1973.		
नियम 53 – देखें दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धाराएं 451 एवं 457।	86	97
<b>MINES AND MINERALS (DEVELOPMENT AND REGULATION) ACT, 1957</b>		
<b>खान और खनिज (विकास और विनियमन) अधिनियम, 1957</b>		
Sections 4, 21, 22 and 23A – See Sections 156 (3), 173 and 190 of the Criminal Procedure Code, 1973.		
धाराएं 4, 21, 22 एवं 23क – देखें दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धाराएं 156 (3), 173 एवं 190।	72	80
JOTI JOURNAL - APRIL 2021		
XVIII		



ACT/ TOPIC	NOTE NO.	PAGE NO.
<b>Section 21</b> – See Sections 451 and 457 of the Criminal Procedure Code, 1973.		
<b>धारा 21</b> – देखें दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धाराएं 451 एवं 457।	<b>86</b>	<b>97</b>
<b>MOTOR VEHICLES ACT, 1988</b>		
<b>मोटरयान अधिनियम, 1988</b>		
<b>Sections 140 and 166</b> – (i) Assessment of income – A stereotypical or myopic approach, should not be adopted but realities of life should be taken into account. (ii) Permanent disability – Determination of – As a typist/data entry operator, full functioning of his hands was essential to earn his livelihood – The extent of his permanent disability was assessed at 89% – Looking to the circumstances of the case, Supreme Court assessed permanent disability at 65%.		
<b>धाराएं 140 एवं 166</b> – (i) आय का आंकलन – एक रूढ़िवादी या अदूरदर्शी दृष्टिकोण नहीं अपनाना चाहिए वरन् जीवन की वास्तविकताओं को विचार में लेना चाहिए। (ii) स्थाई अयोग्यता – निर्धारण – एक टाइपिस्ट/डाटा एंट्री ऑपरेटर के रूप में हाथों की पूर्ण क्रियाशीलता उसकी आजीविका अर्जन के लिए आवश्यक थी – उसकी स्थाई अयोग्यता का निर्धारण 89 प्रतिशत तक विस्तारित किया गया – प्रकरण की परिस्थितियों को देखते हुए उच्चतम न्यायालय ने स्थाई अयोग्यता का निर्धारण 65 प्रतिशत पर किया।	<b>96</b>	<b>112</b>
<b>Section 147 (1) r/w/s 39, 56 and 84(a)</b> – (i) Fitness Certificate – Requirement – Not dependent upon the terms and conditions of the Insurance Company, but it is the requirement of law for using the vehicle in accordance with law. (ii) Absence of fitness certificate – Vehicle was not having the fitness certificate on the date of accident thus, violating the terms and conditions of the insurance policy – Insurance company is not jointly and severely liable to make payment of compensation. (iii) Pay and recover – Insurance Company shall be liable to make payment of the compensation amount with liberty to recover the same from the owner.		
<b>धारा 147 (1) सहपठित धाराएं 39, 56 एवं 84(क)</b> – (i) फिटनेस प्रमाणपत्र – आवश्यकता – बीमा कंपनी के नियमों और शर्तों पर निर्भर नहीं है, अपितु विधि के अनुसार वाहन का उपयोग करने के लिए विधिक आवश्यकता है। (ii) फिटनेस प्रमाणपत्र का अभाव – दुर्घटना तिथि पर वाहन का फिटनेस प्रमाण-पत्र नहीं था परिणामस्वरूप बीमा पॉलिसी के नियम एवं शर्तों का उल्लंघन हुआ और तब बीमा कंपनी प्रतिकर का भुगतान करने के लिए संयुक्ततः और पृथकतः दायी नहीं होगी। (iii) भुगतान करो एवं वसूलो – बीमा कंपनी इस स्वतंत्रता के साथ प्रतिकर का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी है कि वह भुगतान की गई राशि मालिक से वसूल कर सकेगी।	<b>97</b>	<b>113</b>
<b>Section 149 (2) (a) (ii)</b> – (i) Driving license – Absence of endorsement – Effect – Driving license of the driver did not bear the endorsement of transport vehicle – Insurance		

ACT/ TOPIC	NOTE NO.	PAGE NO.
Company exonerated by the tribunal – Held, no requirement to get separate endorsement to drive transport vehicle of LMV class [ <i>Mukund Dewangan v. Oriental Insurance Co. Ltd., 2017 ACJ 2011 (SC)</i> relied on].		
(ii) Liability of Insurance Company – Insurance Company is jointly and severally liable to pay compensation amount along with owner and driver.		
<b>धारा 149 (2) (क) (ii)</b> – (i) चालन अनुज्ञप्ति – पृष्ठांकन का अभाव – प्रभाव – चालक के चालन अनुज्ञप्ति पर वाणिज्यिक वाहन का पृष्ठांकन नहीं था परिणामस्वरूप अधिकरण द्वारा बीमा कंपनी को मुक्त किया गया – अभिनिर्धारित, एल.एम.व्ही. वर्ग के वाणिज्यिक वाहन के चालन हेतु पृथक पृष्ठांकन प्राप्त किये जाने की कोई आवश्यकता नहीं है। [ <i>मुकुन्द देवांगन विरुद्ध ओरियंटल इश्योरेंस कंपनी लिमि., 2017 ए.सी.जे. 2011 (एस.सी.)</i> अवलंबित]		
(ii) बीमा कंपनी का दायित्व – मालिक एवं चालक के साथ, बीमा कंपनी प्रतिकर का भुगतान करने के लिए संयुक्ततः एवं पृथकतः दायी है।	98	114
<b>Section 166</b> – Accident claim – Defence – Insurance Company – In absence of any cogent evidence on record, plea of false implication of vehicle involved in the accident taken by Insurance Company for its defence, cannot be accepted.		
<b>धारा 166</b> – दुर्घटना दावा – बचाव – बीमा कम्पनी – अभिलेख पर किसी निश्चायक साक्ष्य के अभाव में बीमा कंपनी द्वारा अपने बचाव हेतु दुर्घटना में वाहन को झूठा शामिल किये जाने का तर्क स्वीकार नहीं किया जा सकता है।	99	116
<b>Section 166</b> – (i) Contributory negligence – Pillion rider – In a case of composite negligence, pillion rider of the vehicle cannot be held liable for any contributory negligence.		
(ii) As per circular issued by Insurance Regulatory and Development Authority (IRDA), package policy covers the risk of pillion riders on two wheelers also.		
<b>धारा 166</b> – (i) अंशदायी उपेक्षा – पिछली सीट पर सवार व्यक्ति – किसी मिश्रित उपेक्षा के मामले में, वाहन की पिछली सीट पर बैठे व्यक्ति को किसी अंशदायी उपेक्षा हेतु जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता।		
(ii) बीमा विनियामक और विकास प्राधिकरण (आई.आर.डी.ए.) द्वारा जारी परिपत्र के अनुसार पैकेज पालिसी, दोपहिया वाहनों में पिछली सीट पर बैठे व्यक्ति के जोखिम को भी सुरक्षा प्रदान करती है।	100	116
<b>NATIONAL INVESTIGATION AGENCY ACT, 2008</b>		
<b>राष्ट्रीय अनुसंधान एजेंसी अधिनियम, 2008</b>		
<b>Sections 11, 13, 16 and 22</b> – See Section 167 of the Criminal Procedure Code, 1973.		
<b>धाराएं 11, 13, 16 एवं 22</b> – देखें दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 167।		
	74	83

ACT/ TOPIC	NOTE NO.	PAGE NO.
------------	----------	----------

## N.D.P.S. ACT, 1985

### स्वापक औषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985

**Sections 2(xxix), 41(2), 42(1), 43, 44, 48, 49, 53 and 67** – Confessional statement under NDPS Act – Admissibility of – Officers who are invested with the powers u/s 53 of the NDPS Act are “Police Officers” within the meaning of section 25 of the Evidence Act – Statement recorded u/s 67 of the NDPS Act cannot be used as a confessional statement.

धाराएं 2(xxix), 41(2), 42(1), 43, 44, 48, 49, 53 एवं 67— एनडीपीएस अधिनियम के अंतर्गत संस्वीकृति कथन – ग्राह्यता – वे अधिकारीगण जिनमें धारा 53 एनडीपीएस अधिनियम की शक्तियाँ निहित की गई हैं वे साक्ष्य अधिनियम की धारा 25 की परिभाषा के अंतर्गत पुलिस अधिकारी हैं – एनडीपीएस अधिनियम की धारा 67 के अंतर्गत अभिलिखित कथनों का उपयोग संस्वीकृति कथन के रूप में नहीं किया जा सकता।

101 117

**Section 20(ii)(c)** – See Section 378 of the Criminal Procedure Code, 1973 and Sections 3, 21, 118 and 154 of the Evidence Act, 1872.

**धारा 20(ii)(ग)** – देखें दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 378 और साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धाराएं 3, 21, 118 एवं 154।

102 118

**Section 36A (4) [as inserted by (Amendment) Act of (9 of 2001)]** – See Section 167(2), Proviso (a), Explanation I (as inserted by Act 45 of 1978) of the Criminal Procedure Code, 1973.

**धारा 36क(4) (संशोधन) अधिनियम 2001 की 9 के द्वारा यथा अन्तःस्थापित)** – देखें दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 167(2), परन्तुक (क) स्पष्टीकरण। (1978 के अधिनियम सं. 45 के द्वारा यथा अन्तःस्थापित)।

76 87

**Sections 41 to 44 and 53** – See Sections 154, 156 and 157 of the Criminal Procedure Code, 1973.

**धाराएं 41 से 44 एवं 53** – देखें दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धाराएं 154, 156 एवं 157।

103 120

## NEGOTIABLE INSTRUMENTS ACT, 1881

### परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881

**Sections 118, 138 and 139** – Presumption and rebuttal – Presumptions u/s 118 and 139 of Negotiable Instruments Act cannot be rebutted just by recording of statement u/s 313 of CrPC by the accused as such statement is not substantive evidence of defence.

**धाराएं 118, 138 एवं 139** – उपधारणा और खंडन – परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 118 एवं 139 की उपधारणाओं का खंडन अभियुक्त द्वारा दं.प्र.सं. की धारा 313 के अंतर्गत कथन मात्र अभिलिखित करवाकर नहीं किया जा सकता क्योंकि धारा 313 के अंतर्गत किये गये कथन बचाव की सारभूत साक्ष्य नहीं है।

104 123

ACT/ TOPIC	NOTE NO.	PAGE NO.
<p><b>Sections 118 and 139</b> – (i) Presumption – Once the signature of an accused on the cheque/negotiable instrument are established, then these ‘reverse onus’ clauses become operative – In such a situation, the obligation shifts upon the accused to discharge the presumption imposed upon him.</p> <p>(ii) Compensation – There needs to be a consistent approach towards awarding compensation and unless such special circumstances exist, the Courts should uniformly levy fine up to twice the cheque amount along with simple interest @ 9% per annum.</p> <p><b>धाराएं 118 एवं 139</b> – (i) उपधारणा – एक बार चेक/परक्राम्य लिखत पर अभियुक्त के हस्ताक्षर सिद्ध हो जाएं तब ‘रिवर्स ओनस’ भाग क्रियाशील हो जाता है – ऐसी स्थिति में उपधारणा के खण्डन का दायित्व अभियुक्त पर आ जाता है।</p> <p>(ii) प्रतिकर – प्रतिकर दिलाये जाने की दिशा में एक सुसंगत दृष्टिकोण होना चाहिए और जब तक कि विशेष परिस्थितियाँ न हो न्यायालयों को समान रूप से 9: प्रतिवर्ष की दर से साधारण ब्याज के साथ चेक के दो गुने तक राशि जुर्माना करना चाहिए।</p> <p><b>Section 141</b> – Company – Two private individuals are not included in the term “other association of individuals” – Thus, Section 141 of N.I. Act is not applicable to the individuals.</p> <p><b>धारा 141</b> – कंपनी – “व्यक्तियों का कोई संगम” शब्दावली में दो निजी व्यक्ति शामिल नहीं हैं – इसलिये परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 141 व्यक्तियों पर लागू नहीं होती है।</p>	105	124
	106	127

## PREVENTION OF FOOD ADULTERATION ACT, 1954

### खाद्य अपमिश्रण निवारण अधिनियम, 1954

**Sections 2, 7 and 16** – Repeal of 1954 Act by 2006 Act – Effect of – Whether prosecution under 1954 Act could continue even after repeal thereof by 2006 Act? Held, Yes – In view of Section 97 of 2006 Act r/w/s 6 of General Clauses Act, 1897, prosecution and punishment under 1954 Act for pending cases are protected.

**धाराएं 2, 7 एवं 16** – 2006 के अधिनियम द्वारा 1954 के अधिनियम का निरसन – प्रभाव – क्या 1954 के अधिनियम के अधीन अभियोजन 2006 के अधिनियम द्वारा उसके निरसन के बाद भी जारी रह सकता है? अभिनिर्धारित, हां – 2006 के अधिनियम की धारा 97 व साधारण खण्ड अधिनियम, 1897 की धारा 6 के द्वारा लंबित मामलों के लिए 1954 के अधिनियम के अधीन अभियोजन और दण्ड संरक्षित है।

107\* 127

## PROTECTION OF CHILDREN FROM SEXUAL OFFENCES ACT, 2012

### लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम, 2012

**Section 6** – Sexual offences – Age of prosecutrix – Assessment of – Held, in absence of any positive evidence with regard to the age of prosecutrix on the date of occurrence, benefit of doubt has to be given to accused.

ACT/ TOPIC	NOTE NO.	PAGE NO.
धारा 6 – लैंगिक अपराध – अभियोक्त्री की आयु – आंकलन – अभिनिर्धारित, घटना दिनांक को अभियोक्त्री की आयु के संबंध में किसी भी सकारात्मक साक्ष्य के अभाव में संदेह का लाभ अभियुक्त को प्रदान किया जाना चाहिए।	71 (i)	75
<b>Sections 7 and 8 – Sexual offences – Sole testimony – Conviction can be based on the sole testimony of the victim, if it found to be reliable and trustworthy.</b>		
धाराएं 7 एवं 8 – लैंगिक अपराध – एकमात्र साक्ष्य – केवल पीड़ित की एकमात्र साक्ष्य के आधार पर दोषसिद्धि की जा सकती है यदि वह दृढ़ एवं विश्वसनीय पाई जावे।	108	128
<b>Section 42-A – See Section 20 of the Scheduled Castes and Scheduled Tribes (Prevention of Atrocities) Act, 1989.</b>		
धारा 42-ए – देखें अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 की धारा 20।	109	129
<b>PROTECTION OF CHILDREN FROM SEXUAL OFFENCES RULES, 2012</b>		
<b>लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण नियम, 2012</b>		
<b>Rule 7(2) – See Sections 7 and 8 of the Protection of Children From Sexual Offences Act, 2012.</b>		
नियम 7 (2) – देखें लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम, 2012 की धाराएं 7 एवं 8।	108	128
<b>SCHEDULED CASTES AND SCHEDULED TRIBES (PREVENTION OF ATROCITIES) ACT, 1989</b>		
<b>अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989</b>		
Section 20 – (i) Non-obstante clauses – Interpretation – Where two enactments contain conflicting non-obstante clauses, provisions of latter enactment will prevail over the former.		
(ii) Offences involving SC and ST (Prevention of Atrocities) Act, 1989 as well as POCSO Act, 2012 – Special Court constituted under which Act is competent to try such offences? Held, Special Court constituted under POCSO Act, 2012 shall conduct trial of such offences.		
धारा 20 – (i) सर्वोपरि खण्ड – निर्वचन – जहां दो अधिनियमों में परस्पर विरोधी सर्वोपरि खण्ड हों, वहां पश्चातवर्ती अधिनियम के प्रावधान पूर्ववर्ती अधिनियम पर प्रभावी होंगे।		
(ii) अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 एवं लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम, 2012 के अधीन अपराध – किस अधिनियम के अधीन गठित विशेष न्यायालय ऐसे अपराध का विचारण करने के लिए सक्षम है? अभिनिर्धारित, ऐसे अपराधों का विचारण लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम, 2012 के अधीन गठित विशेष न्यायालय द्वारा किया जाएगा।	109	129

ACT/ TOPIC	NOTE NO.	PAGE NO.
------------	-------------	-------------

## **UNLAWFUL ACTIVITIES (PREVENTION) ACT, 1967**

### **विधि विरुद्ध गतिविधियां (निवारण) अधिनियम, 1967**

**Section 43-D** – See Section 167 of the Criminal Procedure Code, 1973.

**धारा 43-घ** – देखें दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 167। **74 83**

### **WORDS AND PHRASES:**

#### **शब्द एवं पद:**

– See Sections 2(xxix), 41(2), 42(1), 43, 44, 48, 49, 53 and 67 of the N.D.P.S. Act, 1985.

– देखें स्वापक औषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985 की धाराएं 2(xxix), 41(2), 42(1), 43, 44, 48, 49, 53 एवं 67। **101 117**

## **PART – IIA (GUIDELINES)**

- |   |     |
|---|-----|
| 1. Guidelines regarding grant of bail in offences of sexual violence. | 130 |
|---|-----|

## **PART – III (CIRCULARS/NOTIFICATIONS)**

- |  |   |
|--|---|
| 1. Notification dated 29.06.2019 of the Commercial Tax Department, Govt. of Madhya Pradesh regarding reduction in Stamp Duty chargeable on the instruments of partition executed in favour of family members.                                      | 1 |
| 2. Notification dated 29.06.2019 of the Commercial Tax Department, Govt. of Madhya Pradesh regarding reduction in Stamp Duty chargeable on the instruments of gift executed in favour of family members.   | 1 |
| 3. Notification dated 29.06.2019 of the Commercial Tax Department, Govt. of Madhya Pradesh regarding reduction in Stamp Duty chargeable on the instruments of sale executed under Article 25 & transfer of lease under Article 62 of Schedule 1-A. | 2 |
| 4. Notification dated 29.06.2019 of the Commercial Tax Department, Govt. of Madhya Pradesh regarding amendment in stamp duty on the instruments executed by a person to include the name of his wife and/or his/her daughter(s) as co-owner.       | 2 |

## **PART – IV (IMPORTANT CENTRAL/STATE ACTS & AMENDMENTS)**

- |  |    |
|--|----|
| 1. The Medical Termination of Pregnancy (Amendment) Act, 2021. | 27 |
| 2. The Madhya Pradesh Civil Court (Amendment) Act, 2021.       | 29 |

## EDITORIAL

Esteemed Readers,

The feeble glimmer of hope and optimism is slowly fading away as the COVID cases in our country are touching high numbers every single day. The word Corona virus has been mentioned multiple times in all my editorials of this bi-monthly since last year. It spread violently, slowed down for a while but is now back with a resurgence. As of now, the *mantras* of “social-distancing” and “stay at home and stay safe” will keep us company for a little bit longer. Martin Luther King, Jr. said “We must accept finite disappointment, but we must never lose infinite hope.”

Every organisation has managed to keep with the changing times and new challenges. Identical was the case with the Indian Judiciary by espousing virtual hearing as an alternative, since the pandemic. To ensure recourse to justice, the role of Judiciary has become more challenging and such challenges are likely to be further compounded in the post-pandemic epoch. Therefore, the Academy imparting judicial education would also be shouldering greater responsibilities in the days to come.

In the month of March, the Academy conducted Special Institutional Training Course for Civil Judges of 2019 batch and Interactive Session on – Key issues relating to cases of Dishonour of Cheque under the N. I. Act. On e-Court Project, eight Special Programmes in March and one in April were also organised by the Academy. But as the virus raised its head again, it crippled the Academic Calendar for 2021. We decided to cancel or postpone our educational programmes scheduled in the months of April and May this year looking to the steep rise in COVID-19 cases.

The First Phase Institutional Induction Training Course for the newly appointed 155 Civil Judges of 2020 batch was conducted online last year. The dangers of the pandemic restricted us from calling them to the Academy for their Second Phase and now for Final Phase. This was a significant disappointment on both ends. After some semblance of normalcy, the new Judges were excited to attend their maiden physical training in the Academy after the pandemic first changed our medium of education in 2020. Their absence from the campus due to the current situation has thwarted me as well. We shall certainly cross roads with these Judges some day in the future.

JOTI Journal, besides its other contents, is an attempt to be a source of modish legal information. Recently, the Division Bench of the Madhya Pradesh High Court has removed the clouds over competency of a Court dealing

commercial disputes involving arbitration in *Yashwardhan Raghuwashi v. District & Sessions Judge and another* (WP No. 19656 of 2020 decided on 26.02.2021). In another case of *Pramod Yadav v. State of Madhya Pradesh and others* (Criminal Appeal No. 5189 of 2020 decided on 22.04.2021), the Division Bench has ended the dilemma of jurisdiction of a Court under two special Acts namely; the Scheduled Castes & Schedule Tribes (Prevention of Atrocities) Act, 1989 and the Protection of Children from Sexual Offences Act, 2012 (POCSO). Notes on these pronouncements find place in Part-II of this issue. The Apex Court has set out the guidelines that are to be observed while dealing bail matters in offences of sexual violence in *Aparna Bhat & ors. v. State of Madhya Pradesh* (Criminal Appeal No. 329 of 2021 decided on 18.03.2021). We have taken this dictum in Part-II A.

As a part of Silver Jubilee celebration of this Academy, we planned a programme of Directors' Retreat last year which was put on an indefinite hold looking to the onslaught of the first wave of the Corona virus. Later on, as the situation seemed to improve for a while, the Madhya Pradesh State Judicial Academy made history by organizing a one-of-its-kind event i.e. All India State Judicial Academies Directors' Retreat on 6<sup>th</sup> & 7<sup>th</sup> March, 2021 at Jabalpur. With the persistent efforts of our Patron Hon'ble the Chief Justice, the programme was conducted with utmost professionalism. The deliberations, discussions and presentations in the Retreat were found to be of many-fold purpose. This programme succeeded to achieve not only the desired results but brought new blooms of hope for continuous and constant sharing of experience by all the State Judicial Academies and it can be said with complete certainty that the Retreat was useful and benevolent for all the participating State Judicial Academies. In this issue, we have included a brief report on this historic event with some pictorial glimpses for our honoured readers.

And, lastly, the current surge in the COVID-19 cases has sent shock-waves throughout the nation. In this unpleasant phase, we lost some colleagues of our district judiciary, the loss of whom has put all of us in an unbridled sorrow. A feeling resonated by everyone of us.

As the saying goes – "It is only in our darkest hours that we may discover the true strength of the brilliant light within ourselves that can never, ever, be dimmed." In these testing times, I expect each of you is taking good care of yourself and the people around you.

**Ramkumar Choubey**  
Director



## ALL INDIA STATE JUDICIAL ACADEMIES DIRECTORS' RETREAT 6<sup>th</sup> & 7<sup>th</sup> MARCH, 2021 AT MANAS BHAWAN, JABALPUR GLIMPSES OF INAUGURAL CEREMONY



Hon'ble the President of India Shri Ram Nath Kovind & other dignitaries on the dais



Hon'ble the President of India inaugurating the Retreat by lighting the lamp



## ALL INDIA STATE JUDICIAL ACADEMIES DIRECTORS' RETREAT 6<sup>th</sup> & 7<sup>th</sup> MARCH, 2021 AT MANAS BHAWAN, JABALPUR GLIMPSES OF INAUGURAL CEREMONY



Hon'ble Shri Justice Mohammad Rafiq, Chief Justice delivering Welcome Address



Hon'ble the President of India addressing the august gathering



**ALL INDIA STATE JUDICIAL ACADEMIES DIRECTORS' RETREAT  
6<sup>th</sup> & 7<sup>th</sup> MARCH, 2021 AT MANAS BHAWAN, JABALPUR  
GLIMPSES OF INAUGURAL CEREMONY**



Hon'ble the President of India addressing the august gathering



Hon'ble Shri Justice Prakash Shrivastava, Chairman, MPSJA  
proposing the Vote of Thanks

**ALL INDIA STATE JUDICIAL ACADEMIES DIRECTORS' RETREAT  
6<sup>th</sup> & 7<sup>th</sup> MARCH, 2021  
GROUP PHOTOGRAPH**



Hon'ble the President of India & other dignitaries with Chairmen/Judges In-charge of participating State Judicial Academies



Hon'ble the President of India & other dignitaries with Directors of participating State Judicial Academies



**ALL INDIA STATE JUDICIAL ACADEMIES DIRECTORS' RETREAT  
6<sup>th</sup> & 7<sup>th</sup> MARCH, 2021 AT MPSJA, JABALPUR  
GLIMPSES OF PLENARY SESSIONS**



Plenary Session – 1 - 06.03.2021 Chaired by Hon'ble Shri Justice S. Ravindra Bhat, Judge, Supreme Court of India and Co-chaired by Hon'ble Shri Justice Sanjay Karol, Chief Justice of the High Court of Judicature at Patna



Plenary Session – 2 - 06.03.2021 Chaired by Hon'ble Shri Justice Hemant Gupta, Judge, Supreme Court of India and Co-chaired by Hon'ble Shri Justice Biswanath Samadder, Chief Justice, High Court of Meghalaya



Plenary Session – 3 - 07.03.2021 Chaired by Hon'ble Shri Justice Dipankar Datta, Chief Justice, Bombay High Court

**ALL INDIA STATE JUDICIAL ACADEMIES DIRECTORS' RETREAT  
6<sup>th</sup> & 7<sup>th</sup> MARCH, 2021 AT MPSJA, JABALPUR  
GLIMPSES OF THE PLENARY SESSIONS**



Plenary Session – 4 - 07.03.2021 Chaired by Hon'ble Shri Justice Pankaj Mithal,  
Chief Justice, High Court of Jammu & Kashmir



Sharing of Best Practices & Presentation Session - 07.03.2021 Chaired by  
Hon'ble Shri Justice Abhay Shreeniwas Oka, Chief Justice, Karnataka High Court



Release of "Concept Note" on Retreat in the Valedictory Session



**ALL INDIA STATE JUDICIAL ACADEMIES DIRECTORS' RETREAT  
6<sup>th</sup> & 7<sup>th</sup> MARCH, 2021 AT MPSJA, JABALPUR  
GLIMPSES OF THE PLENARY SESSIONS**



Open interaction and discussion amongst the participants during the Plenary Sessions of Retreat

## **All India State Judicial Academies Directors' Retreat**

The Madhya Pradesh State Judicial Academy, in its maiden venture organized “All India State Judicial Academies Directors' Retreat” on 6<sup>th</sup> & 7<sup>th</sup> March, 2021 at Jabalpur with the objective to provide a platform to all the State Judicial Academies (SJAs) across the country to deliberate upon diverse themes of judicial education and training and to share the best practices prevalent amongst these Academies for achieving overall judicial excellence.

The programme was inaugurated by Hon'ble the President of India Shri Ram Nath Kovind on Saturday, the 6<sup>th</sup> March, 2021 at Manas Bhawan. Hon'ble Governor of Madhya Pradesh Smt. Anandiben Patel and Hon'ble Chief Minister of Madhya Pradesh Shri Shivraj Singh Chouhan, Hon'ble Chief Justice of India Shri Justice Sharad Arvind Bobde, Hon'ble Judges of the Supreme Court Shri Justice N.V. Ramana, Shri Justice Ashok Bhushan, Shri Justice Hemant Gupta and Shri Justice S. Ravindra Bhat, Hon'ble the Chief Justices of High Court of Karnataka, Punjab & Haryana, Bombay, Meghalaya, Jammu & Kashmir and Patna, Shri Justice Abhay Shreeniwas Oka, Shri Justice Ravi Shanker Jha, Shri Justice Dipankar Datta, Shri Justice Biswanath Somadder, Shri Justice Pankaj Mithal and Shri Justice Sanjay Karol, respectively, Chairmen/Judges In-charge/Presidents and Directors of State Judicial Academies, former Judges of the Supreme Court and Judges of the High Court of Madhya Pradesh graced the occasion.

Four Plenary Sessions on topics like *Continuous Judicial Education: Emerging Challenges and Opportunities, Complex Demands of Judging Skills, Adult Learning Andragogy in Judicial Education; Special Reference to Induction & Orientation Courses and Gender Sensitization, Justness and Social Media: Nascent Challenges of Judicial Education* were also held in the Academy. Presentations were made and the invitees shared their experiences of the Retreat. A Concept Note was prepared on the Retreat which was presented by the Director, Madhya Pradesh State Judicial Academy in the valedictory session.





## **HON'BLE SHRI JUSTICE VISHNU PRATAP SINGH CHAUHAN DEMITTS OFFICE**



Hon'ble Shri Justice Vishnu Pratap Singh Chauhan demitted office on His Lordship's attaining superannuation.

His Lordship was born on 15.03.1959 at Bhind. After obtaining degrees of M.Sc., B.Ed. & LL.B., joined Madhya Pradesh Judicial Services as Civil Judge Class II on 08.10.1985. His Lordship was Promoted to Higher Judicial Services as Additional District & Sessions Judge on 01.06.1998. Was granted Selection Grade Scale w.e.f. 26.02.2006 and Super Time Scale w.e.f. 19.10.2014.

His Lordship worked in different capacities at various places at Bhopal, Alirajpur, Raghogarh, Indore, Mahasamund, Baloda-Bazar, Narsinghpur, Chhatarpur, Mungaoli, Chhindwara, Guna, Gwalior, Sidhi, Hoshangabad and Gwalior. His Lordship held the posts of Competent Authority, Housing Board, Indore, President, District Consumer Forum at Chhindwara and Guna and was also District & Sessions Judge, Sidhi & Hoshangabd w.e.f. 01.04.2014 and 20.03.2017, respectively. His Lordship was District Judge (Inspection), Gwalior Zone, High Court of Madhya Pradesh from 18.09.2017 till elevation. His Lordship took oath as Judge, High Court of Madhya Pradesh on 19.11.2018.

His Lordship was accorded farewell ovation on 12.03.2021 in the Conference Hall of South Block, High Court of Madhya Pradesh at Jabalpur.

**We on behalf of JOTI Journal, wish His Lordship a healthy, happy and prosperous life.**

●

## **HON'BLE SHRI JUSTICE JAGDISH PRASAD GUPTA DEMITTS OFFICE**



Hon'ble Shri Justice Jagdish Prasad Gupta demitted office on His Lordship's attaining superannuation.

His Lordship was born on 21.03.1959 at Sabalgarh, District Morena. After completion of education, His Lordship enrolled as an Advocate in the State Bar Council of Madhya Pradesh and started practising under the able guidance of Late Shri Bahadur Singh Dhakad, Senior Advocate, Sabalgarh. His Lordship joined M.P. Judicial Services as Civil Judge Class II on 05.03.1983. Promoted to Higher Judicial Services as Additional District & Sessions Judge on 04.06.1996. His Lordship granted Selection Scale on 01.06.2002 and Super Time Scale on 02.01.2012.

His Lordship worked in different capacities at Morena, Bhopal, Sehore, Begumganj (Raisen), Guna, Datia, Shivpuri, Indore, Tikamgarh. Also served as Deputy Welfare Commissioner (Bhopal Gas Commission), Additional Registrar (Judl.), Additional Registrar (Vig), High Court of Madhya Pradesh.

His Lordship was also Director, Judicial Officers' Training & Research Institute (JOTRI) now Madhya Pradesh State Judicial Academy (MPSJA). As Director, MPSJA, His Lordship had the distinct opportunity of imparting Induction Training Course to more than 460 newly appointed Civil Judges Class II of 2007, 2008, 2010 and 2011 batches and also conducted various Refresher Courses and Workshops for the Judicial Officers. It is worth mentioning here that during his tenure, JOTRI (now MPSJA) became perhaps the only Academy in the country to have conducted a week-long training course on the use of lap-top computers provided to the Judges of the District Judiciary.

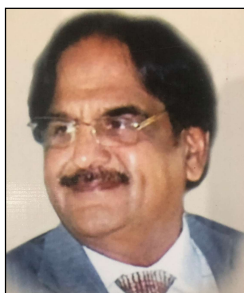
His Lordship worked as District & Sessions Judge, Ujjain and thereafter as Principal Registrar, High Court of M.P., Bench Gwalior. Was elevated as Additional Judge on 07.04.2016 and became Permanent Judge, High Court of Madhya Pradesh on 17.03.2018.

His Lordship was accorded farewell ovation on 19.03.2021 in the Conference Hall of South Block, High Court of Madhya Pradesh at Jabalpur.

**We on behalf of JOTI Journal, wish His Lordship a healthy, happy and prosperous life.**

●

## **HON'BLE SHRI JUSTICE MOHAMMAD FAHIM ANWAR DEMITTS OFFICE**



Hon'ble Shri Justice Mohammad Fahim Anwar demitted office on His Lordship's attaining superannuation.

His Lordship was born on 05.04.1959 in Sehore. After obtaining degrees of M.Sc. and LL.B., His Lordship joined Madhya Pradesh Judicial Services as Civil Judge Class II on 06.11.1985. Promoted to Higher Judicial Services as Additional District & Sessions Judge on 05.11.1997. His Lordship was granted Selection Grade Scale w.e.f. 26.02.2006 and Super Time Scale w.e.f. 15.04.2014.

His Lordship held various posts in different capacities in the State of Madhya Pradesh at Sehore, Betul, Bhainsdehi, Khachraud, Bhopal, Jora, Gadarwara, Narsinghpur, Mandsaur, Khurai and Gwalior. Also held the posts of President, District Consumer Forum, Rewa, Deputy Commissioner, Additional Welfare Commissioner and Officiating Registrar, Bhopal Gas Commission, for adjudicating the compensation claim cases etc. Appointed as District & Sessions Judge, Hoshangabad on 06.04.2015. His Lordship was Registrar General, High Court of Madhya Pradesh from 01.04.2017 till elevation. Took oath as Judge, High Court of Madhya Pradesh on 19.06.2018.

His Lordship was accorded farewell ovation on 01.04.2021 in the Conference Hall of South Block, High Court of Madhya Pradesh at Jabalpur.

**We on behalf of JOTI Journal, wish His Lordship a healthy, happy and prosperous life.**

●

## OBITUARY

### SHRI PURUSHOTTAM VISHNU NAMJOSHI



Shri Purushottam Vishnu Namjoshi, the then Director of Judicial Officers' Training Institute (as it was formerly known), was born on 25.05.1942. Joined Judicial Services in Madhya Pradesh on 23.02.1968 and was posted in various capacities at Khandwa, Gwalior, Jabalpur, Damoh, Guna and Balaghat. Was appointed as District & Sessions Judge, Ambikapur (now in Chhattisgarh) on 30.04.1992. Had the longest term as Director, JOTI now Madhya Pradesh State Judicial Academy (MPSJA) from 13.05.1996 to 31.05.2002 and was also Secretary, M.P. State Legal Services Authority from 23.02.1998. Despite the term of his office ending in 2002, his unwavering spirit and determination to contribute to the field of judicial education didn't stop after retirement. He would inspire young minds that wanted to be in the field of providing justice by teaching them, by training them, by nurturing them. His wife Late Hon'ble Smt. Justice Manjusha Namjoshi served as Judge of the High Court of Madhya Pradesh from 07.10.2005 to 19.08.2009.

He breathed his last on 11.04.2021 and is survived by two daughters; Smt. Nandini Vyas, presently Director, Rajasthan State Judicial Academy and Smt. Geetu Natu. His dedication to this field will never be forgotten and will set precedent in the field of judicial education for years to come.

We on behalf of JOTI Journal, express our sincere condolences to the bereaved family and pray that the departed soul may rest in peace and tranquility.



The wise man lets go of all results, whether good or bad and is focused on the action alone.

– Bhagavad Gita

## PART - I

### मानसिक स्वास्थ्य एवं देखरेख अधिनियम, 2017 : संक्षिप्त परिचय

हेमन्त जोशी

सचिव, जिला विधिक सेवा प्राधिकरण, बड़वानी

मानसिक स्वास्थ्य एवं देखरेख अधिनियम, 2017 (आगे संक्षेप में— “अधिनियम 2017”) की प्रस्तावना के अनुसार यह अधिनियम मानसिक रुग्णता से ग्रस्त व्यक्तियों के लिए मानसिक स्वास्थ्य, देखरेख और सेवाओं के लिए और मानसिक स्वास्थ्य, देखरेख और सेवाओं के परिदान के दौरान ऐसे व्यक्तियों के अधिकारों का संरक्षण, संवर्धन और उनके पूरा करने तथा उनसे संबंधित या उनके आनुशंगिक विषयों का उपबंध करने के लिए अधिनियमित किया गया है। अधिनियम 2017 में न केवल मानसिक रुग्णता/रोग की परिभाषा को विस्तृत किया गया है वरन् ऐसे व्यक्ति की, जहां वह स्वयं सक्षम प्रकट हो, या उसकी देखरेख करने वाले व्यक्ति की सहमति की अनिवार्यता, उनको जांच/उपचार/कार्यवाही के प्रत्येक स्तर पर की जा रही कार्यवाही से अवगत करवाने को भी बल दिया गया है।

भारत सरकार के स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय की अधिसूचना दिनांक 02 जनवरी 2018 के द्वारा केन्द्रीय सरकार ने दिनांक 07 जुलाई 2018 को इस अधिनियम 2017 को प्रवृत्त होने की तिथि के रूप में नियत किया है। अतएव अधिनियम 2017 की धारा 1(3) के अनुसार यह उक्त तिथि से लागू हो चुका है।

#### पूर्व विधि के प्रावधानों की प्रयोज्यता

अधिनियम 2017 के प्रवृत्त होने के पूर्व मानसिक स्वास्थ्य अधिनियम, 1987 प्रवृत्त था जिसे अधिनियम 2017 की धारा 126 (1) के द्वारा निरसित किया गया है। अधिनियम 2017 की धारा 126 (2)(बी) के प्रावधानों के प्रकाश में अधिनियम 2017 के अधीन प्राधिकरण, संस्थाओं के गठन तक मानसिक स्वास्थ्य अधिनियम, 1987 के अधीन गठित इकाईयां क्रियाशील रहेंगी।

#### महत्वपूर्ण परिभाषाएं

अधिनियम में कुछ पदों को परिभाषित किया गया है। न्यायालीन कार्यवाही के प्रयोजन से निम्न परिभाषाएं महत्वपूर्ण हैं।

**धारा 2 (ङ) देखरेख कर्ता** — देखरेख कर्ता से कोई ऐसा व्यक्ति अभिप्रेत है जो मानसिक रूप से रुग्ण व्यक्ति के साथ रहता है और उस व्यक्ति की देखरेख करने के लिए उत्तरदायी है तथा इसके अंतर्गत नातेदार या कोई अन्य व्यक्ति भी है जो इस कृत्य का या तो निःशुल्क या पारिश्रमिक के साथ पालन करता है।

**धारा 2 (ज) कुटुंब** — कुटुंब से व्यक्तियों का कोई ऐसा समूह अभिप्रेत है, जो रक्त, दत्तक या विवाह द्वारा सम्बन्धित है।

**धारा 2 (ठ) मजिस्ट्रेट** – मजिस्ट्रेट से अभिप्रेत है—

- (i) दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) की धारा 2 के खंड (ट) के अर्थ के अंतर्गत किसी महानगर क्षेत्र के संबंध में, महानगर मजिस्ट्रेट
- (ii) किसी अन्य क्षेत्र में संबंध में मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, उपखंड न्यायिक मजिस्ट्रेट या ऐसा अन्य प्रथम वर्ग का न्यायिक मजिस्ट्रेट जिसे राज्य सरकार, अधिसूचना द्वारा इस अधिनियम के अधीन किसी मजिस्ट्रेट के कृत्यों का पालन करने के लिए सशक्त करे।

**धारा 2 (ण) मानसिक स्वास्थ्य देखरेख** – मानसिक स्वास्थ्य देखरेख के अंतर्गत किसी व्यक्ति की मानसिक स्थिति का विश्लेषण और निदान तथा ऐसे व्यक्ति का, उनकी किसी मानसिक रूग्णता या आशंकित मानसिक रूग्णता के लिए उपचार और देखरेख तथा पुनर्वास भी है।

**धारा 2 (त) मानसिक स्वास्थ्य स्थापन** – मानसिक स्वास्थ्य स्थापन से आयुर्वेद, योग और प्राकृतिक चिकित्सा, यूनानी, सिद्ध और होम्योपैथी स्थापन, चाहे व किसी भी नाम से ज्ञात हो, सहित कोई स्वास्थ्य स्थापन अभिप्रेत है जो पूर्णतः या भागतः मानसिक रूग्णता से ग्रस्त व्यक्तियों की देखरेख के लिए समुचित सरकार, स्थानीय प्राधिकारी, न्यास, चाहे प्राइवेट हो या सार्वजनिक, नियत, सहकारी सोसायटी, संगठन या किसी इकाई या व्यक्ति द्वारा स्थापित स्वमित्वाधीन, नियंत्रित या अनुरक्षित किया गया है, जहां मानसिक रूग्णता से ग्रस्त व्यक्ति देखरेख, उपचार, स्वास्थ्य लाभ और पुनर्वासन के लिए, अस्थायी रूप से या अन्यथा भर्ती किये जाते हैं और रहते हैं या रखे जाते हैं; और इसके अंतर्गत समुचित सरकार, स्थानीय प्राधिकारी, न्यास, चाहे प्राइवेट हो या सार्वजनिक, नियत, सहकारी सोसायटी, संगठन या किसी इकाई या व्यक्ति द्वारा स्थापित या अनुरक्षित साधारण अस्पताल या साधारण परिचर्या गृह भी है, किन्तु इसके अंतर्गत कुटुंबी निवास स्थान नहीं हैं जहां मानसिक रूग्णता से ग्रस्त व्यक्ति अपने नातेदारों या मित्रों के साथ निवास करता है।

**धारा 2 (ध) मानसिक रूग्णता** – मानसिक रूग्णता से चिन्तन, मनःस्थिति, अनुभूति, अभिविन्यास या स्मृति का ऐसा पर्याप्त विकार अभिप्रेत है, जिससे निर्णय, व्यवहार, वास्तविकता को पहचानने की क्षमता या जीवन की साधारण आवश्यकताओं को पूरा करने की योग्यता, एल्कोहल और मादक द्रव्यों के दुरुपयोग से सहबद्ध व्यक्ति के चित्त के अवरुद्ध या अपूर्ण विकास की ऐसी दशा है जिसे विशेष रूप से बुद्धिमत्ता की अवसामान्यता के रूप में वर्णित किया जाता है।

**धारा 2 (ब) मानसिक रूग्णता से ग्रस्त बंदी** – मानसिक रूग्णता से ग्रस्त बंदी से मानसिक रूग्णता से ग्रस्त ऐसा व्यक्ति अभिप्रेत है जो किसी अपराध का विचारणाधीन है या जिसे सिद्धदोष ठहराया गया है और किसी जेल या कारागार में निरुद्ध है।

**धारा 2 (जेडए) नातेदार** – नातेदार से कोई व्यक्ति अभिप्रेत है जिसका मानसिक रूग्ण व्यक्ति से रक्त, विवाह या दत्तक ग्रहण के आधार पर कोई नाता है।

### **नामनिर्दिष्ट प्रतिनिधि**

अधिनियम 2017 की धारा 14 (1) प्रत्येक वयस्क व्यक्ति को स्वयं के लिए नामांकित प्रतिनिधि नियुक्ति का अधिकार प्रदान करती है। धारा 14 की उपधारा 4 (ड) के अनुसार जहां उपधारा 4 (क से घ) में वर्णित कोई व्यक्ति उपलब्ध न हो (जैसा कि स्वतंत्र रूप से घूमने वाले मनोरोगी

के साथ सामान्यतः होता है) तो बोर्ड द्वारा समाज कल्याण विभाग के निदेशक या उसके द्वारा नामित प्रतिनिधि को मनोरोगी के नामित प्रतिनिधि के रूप में नियुक्त किया जाएगा। परंतु ऐसे नामित प्रतिनिधि की नियुक्ति तक मनोरोगियों के लिए कार्य करने वाले किसी पंजीबद्ध संस्थान के किसी प्रतिनिधि को मेडिकल हेल्थ प्रोफेशनल नामित प्रतिनिधि के रूप में कार्य करने के लिए अस्थायी रूप से नियुक्त कर सकता है।

अधिनियम 2017 में, रजिस्ट्रीकृत संगठन के प्रतिनिधि को नामनिर्दिष्ट प्रतिनिधि के रूप में कार्य करने की वैकल्पिक व्यवस्था की गई है। धारा 14 की उपधारा (4) का परंतुक इस प्रकार है—

“परंतु मानसिक स्वास्थ्य वृत्तिक द्वारा, सोसाईटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1860 या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि के अधीन रजिस्ट्रीकृत किया संगठन का प्रतिनिधित्व करने वाले किसी ऐसे व्यक्ति को, जो मानसिक रूग्णता से ग्रस्त किसी व्यक्ति के लिए कार्य कर रहा है, संबद्ध बोर्ड द्वारा नामनिर्दिष्ट प्रतिनिधि की नियुक्ति लंबित रहने तक नामनिर्दिष्ट प्रतिनिधि के कर्तव्यों का निर्वहन करने के लिए अस्थायी रूप से लगाया जा सकेगा।”

वर्तमान में अधिनियम 2017 के अधीन कोई बोर्ड गठित नहीं होने के कारण स्वच्छंदता से विचरण करने वाले मानसिक रूग्ण व्यक्ति, जो प्रतिनिधि नियुक्त करने में अक्षम हैं अथवा जिनका कोई नातेदार उपलब्ध नहीं हो, उनके संबंध में यह प्रावधान महत्वपूर्ण है।

### **निःशुल्क विधिक सहायता एवं उपचार**

अधिनियम 2017 में मानसिक रूग्णता से ग्रस्त व्यक्ति को विधिक सहायता प्राप्त करने के अधिकार का उपबंध है। धारा 27 के अनुसार, मानसिक रूग्णता से ग्रस्त कोई व्यक्ति इस अधिनियम के अधीन दिए गए उसके अधिकारों में से किन्हीं अधिकारों का प्रयोग करने के लिए निःशुल्क विधिक सेवाएं प्राप्त करने का हकदार होगा। तथा मजिस्ट्रेट, पुलिस अधिकारी या संरक्षणीय संस्था का विहित भारसाधक व्यक्ति किसी मानसिक स्वास्थ्य स्थापन के भारसाधक चिकित्सा अधिकारी या मानसिक स्वास्थ्य वृत्तिक का मानसिक रूग्णता से ग्रस्त व्यक्ति को यह सूचित करने का कर्तव्य होगा कि वह विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 या अन्य सुसंगत विधियों या न्यायालय के किसी आदेश के अधीन निःशुल्क विधिक सेवाओं का हकदार होगा और उसे सेवाओं की उपलब्धता के लिए संपर्क ब्यौरे उपलब्ध कराएगा।

अधिनियम 2017 की धारा 18(7) में प्रावधान है कि ऐसे मनोरोगी जो गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन करने वाले हैं या परित्यक्त हैं या बेघर हैं, निःशुल्क मानसिक स्वास्थ्य उपचार और सेवाएं पाने के पात्र हैं और उनसे सक्षम सरकार द्वारा संचालित या फंडेड और डेसिगनेटेड मानसिक स्वास्थ्य संस्थान में कोई आर्थिक शुल्क नहीं लिया जाएगा।

### **पुलिस के कर्तव्य और अपनायी जाने वाली प्रक्रिया**

अधिनियम 2017 की धारा 100 मानसिक रूग्णता से ग्रस्त व्यक्तियों के प्रति पुलिस अधिकारियों के कर्तव्यों के संबंध में है। जिसके अनुसार, किसी पुलिस थाने के प्रत्येक भारसाधक अधिकारी का

यह कर्तव्य होगा कि वह पुलिस थाने की सीमाओं के भीतर स्वच्छंद विचरण करते हुए पाए जाने वाले किसी ऐसे व्यक्ति को संरक्षा में ले जो व्यक्ति मानसिक रूग्णता से ग्रस्त है और स्वयं की देखरेख करने में असमर्थ है अथवा वह व्यक्ति मानसिक रूग्णता के कारण स्वयं या अन्य व्यक्तियों के लिए जोखिम है।

किसी पुलिस थाने का भारसाधक अधिकारी उस व्यक्ति को जिसे संरक्षा में लिया गया है ऐसी संरक्षा में उसे लिए जाने के आधार सूचित करेगा। यदि पुलिस अधिकारी की राय में ऐसे व्यक्ति को उन आधारों को समझने में कठिनाई होगी तो उसके नामनिर्दिष्ट प्रतिनिधि को आधार सूचित करेगा। संरक्षा में लिए गए प्रत्येक व्यक्ति को, यथासंभव शीघ्र किन्तु संरक्षा में लिए जाने के चौबीस घंटे के भीतर व्यक्ति की स्वास्थ्य संबंधी देखरेख की आवश्यकताओं का निर्धारण करने के लिए नजदीक के लोक स्वास्थ्य स्थापन में ले जाया जाएगा। लेकिन संरक्षा में लिए गये किसी भी व्यक्ति को किन्हीं भी परिस्थितियों में पुलिस लॉक-अप या कारागार में निरुद्ध नहीं किया जाएगा।

लोक स्वास्थ्य स्थापन का भारसाधक चिकित्सा अधिकारी, व्यक्ति का निर्धारण करने का उत्तरदायी होगा और मानसिक रूग्णता से ग्रस्त व्यक्ति की आवश्यकताओं पर विशिष्ट परिस्थितियों में इस अधिनियम के उपबंधों के अनुसार ध्यान दिया जाएगा। लोक स्वास्थ्य स्थापन का भारसाधक चिकित्सा अधिकारी या मानसिक स्वास्थ्य वृत्तिक का, यदि व्यक्ति के निर्धारण पर यह निष्कर्ष है कि ऐसे व्यक्ति को ऐसी प्रकृति या डिग्री की कोई मानसिक रूग्णता नहीं है जिसमें उसे मानसिक स्वास्थ्य स्थापन में भर्ती करना अपेक्षित है, वह अपने निर्धारण की सूचना उस पुलिस अधिकारी को देगा जिसने उस व्यक्ति को संरक्षा में लिया था और पुलिस अधिकारी उस व्यक्ति को उसके निवास स्थान पर या बेघर व्यक्तियों की दशा में बेघर व्यक्तियों के किसी सरकारी स्थापना में ले जाएगा। मानसिक रूग्णता से ग्रस्त किसी व्यक्ति की दशा में, जो बेघर है या जो समुदाय में स्वच्छंद विचरण करते हुए पाया जाता है, गुमशुदा व्यक्ति की प्रथम सूचना रिपोर्ट संबंधित पुलिस थाने में दर्ज की जाएगी और थाना अधिकारी का ऐसे व्यक्ति के कुटुंब का पता लगाने का और उसके कुटुंब को व्यक्ति के ठिकाने के बारे में सूचित करने का कर्तव्य होगा।

### **प्राइवेट निवास स्थान में मानसिक रूग्णता से ग्रस्त व्यक्ति के बारे में उपबंध**

अधिनियम 2017 में यह प्रावधान है कि किसी प्राइवेट निवास स्थान में मानसिक रूग्णता से ग्रस्त किसी व्यक्ति के प्रति यदि बुरा बर्ताव किया जाता है या उपेक्षा की जाती है तब संबंधित पुलिस थाने का भारसाधक अधिकारी मजिस्ट्रेट को रिपोर्ट करेगा। जिस पर आगे कार्यवाही की जाएगी।

धारा 101(1) के अनुसार, पुलिस थाने का भारसाधक अधिकारी पुलिस थाने की सीमाओं के भीतर निवास करने वाले मानसिक रूग्णता से ग्रस्त व्यक्ति के साथ बुरा बर्ताव या उपेक्षा किए जाने की जानकारी होने पर तुरंत मजिस्ट्रेट को, जिसकी स्थानीय अधिकारिता की सीमाओं के भीतर मानसिक रूग्णता से ग्रस्त व्यक्ति निवास करता है, इस तथ्य की रिपोर्ट करेगा। धारा 101(2) के अनुसार, कोई प्राइवेट व्यक्ति भी उसे मानसिक रूग्णता से ग्रस्त व्यक्ति के साथ बुरा बर्ताव या उपेक्षा किए जाने की जानकारी होने पर इस तथ्य की रिपोर्ट उस पुलिस थाने के भारसाधक पुलिस अधिकारी को कर सकता है जिसकी अधिकारिता के भीतर मानसिक रूग्णता से ग्रस्त व्यक्ति निवास करता है।



धारा 101(3) में प्रावधान है कि मजिस्ट्रेट पुलिस अधिकारी की रिपोर्ट के आधार पर या अन्यथा जानकारी मिलने पर कि उसकी अधिकारिता की स्थानीय सीमाओं के भीतर मानसिक रुग्णता से ग्रस्त व्यक्ति के साथ बुरा बर्ताव किया जा रहा है या उसकी उपेक्षा की जा रही है, मानसिक रुग्णता से ग्रस्त व्यक्ति को अपने समक्ष पेश करा सकेगा और धारा 102 के उपबंधों के अनुसार कोई आदेश पारित कर सकेगा।

### **मजिस्ट्रेट द्वारा अपनायी जाने वाली प्रक्रिया**

अधिनियम 2017 की धारा 102 में मजिस्ट्रेट द्वारा मानसिक रुग्णता से ग्रस्त व्यक्ति का मानसिक स्वास्थ्य स्थापना में प्रवहण या भर्ती करने की प्रक्रिया विहित की गई है। जिसके अनुसार, जब मानसिक रुग्णता से ग्रस्त कोई व्यक्ति या ऐसा व्यक्ति जिसे मानसिक रुग्णता हो सकती है, मजिस्ट्रेट के समक्ष हाजिर होता है या लाया जाता है तो मजिस्ट्रेट—

- (क) लिखित आदेश कर सकेगा कि व्यक्ति को निर्धारण और उपचार के लिए किसी लोक मानसिक स्वास्थ्य स्थापन में ले जाया जाए, यदि आवश्यकता हो और मानसिक स्वास्थ्य स्थापन उस व्यक्ति के साथ अधिनियम के उपबंधों के अनुसार व्यवहार करेगा; या
- (ख) मानसिक स्वास्थ्य स्थापन के भारसाधक चिकित्सा अधिकार या मानसिक स्वास्थ्य स्थापन वृत्तिक को, उस व्यक्ति के निर्धारण और आवश्यक उपचार, यदि कोई हो, की योजना बनाने हेतु समर्थ बनाने के लिए और मानसिक स्वास्थ्य स्थापन में ऐसी अवधि के लिए जो दस दिनों से अधिक की नहीं होगी, मानसिक रुग्णता से ग्रस्त व्यक्ति की भर्ती को प्राधिकृत करने के लिए लिखित आदेश कर सकेगा।

निर्दिष्ट निर्धारण की अवधि के पूरा होने पर, मानसिक स्वास्थ्य स्थापना का भारसाधक चिकित्सा अधिकारी या मानसिक स्थापन वृत्तिक, मजिस्ट्रेट को एक रिपोर्ट प्रस्तुत करेगा और व्यक्ति के साथ इस अधिनियम के उपबंधों के अनुसार ही व्यवहार किया जाएगा।

### **न्यायालय की भूमिका व दायित्व**

मानसिक रुग्णता से ग्रसित/ग्रसित होने की संभावना वाले व्यक्ति के संबंध में न्यायालय की भूमिका एवं दायित्व समझना आवश्यक है। निरसित मानसिक स्वास्थ्य अधिनियम, 1987 के अध्याय 4 के भाग 3 में किसी मानसिक रुग्ण व्यक्ति को मानसिक चिकित्सालय में उपचार व देखरेख हेतु भर्ती करने के संबंध में मजिस्ट्रेट द्वारा आदेश यानि रिसेप्शन आर्डर देने की प्रक्रिया विषयक प्रावधान किए गए थे। निरसित अधिनियम में मनोचिकित्सालय या मानसिक रुग्ण के परिजन द्वारा आवेदन किये जाने व मानसिक रुग्ण व्यक्ति को पुलिस अधिकारी या प्राइवेट व्यक्ति द्वारा प्रस्तुत किये जाने पर रिसेप्शन आर्डर जारी करने का प्रावधान करता था। इन प्रावधानों में किसी मानसिक रुग्ण व्यक्ति को मनोचिकित्सालय में विहित अवधि से अधिक समय तक रखे जाने के लिए मजिस्ट्रेट के आदेश की अपेक्षा एक अनिवार्यता थी।

अधिनियम 2017 में मानसिक रुग्ण व्यक्ति के किसी चिकित्सालय/मनोचिकित्सालय में भर्ती या रखे जाने की अवधि निर्धारण के लिए मजिस्ट्रेट के आदेश की अपेक्षा को सीमित करते हुए प्रक्रिया

को सरल किया गया है। धारा 100 से 102 के प्रावधानों से स्पष्ट है कि मजिस्ट्रेट के समक्ष कार्यवाही की स्थिति को मात्र कुछ परिस्थितियों तक सीमित रखा गया है और उसमें भी मजिस्ट्रेट द्वारा एक बार मनोचिकित्सालय/चिकित्सालय में रखने का आदेश देने के पश्चात् अवधि में वृद्धि के लिए पुनः मजिस्ट्रेट के पास जाने की आवश्यकता को भी शिथिल कर दिया गया है।

मनोरोगियों को दो वर्गों में बाँटा गया है—

1. ऐसे मनोरोगी जो स्वयं उपचार हेतु जाने और अधिनियम के प्रावधानों के अंतर्गत उपचार हेतु व अन्य प्रक्रियागत कार्य हेतु सहमति देने में सक्षम हैं;
2. ऐसे मनोरोगी जो मनोरोग के कारण स्वतंत्र विधिक सहमति देने में असमर्थ हैं।

ये दो वर्ग आगे और दो वर्गों में विभाजित किए गए हैं—

एक. ऐसे मनोरोगी जो परिवार/देखरेख करने वालों के साथ रहते हैं;

दो. ऐसे मनोरोगी जो स्वतंत्र रूप से विचरण करते रहते हैं।

अधिनियम 2017 का अध्याय 12 “स्वैच्छिक रोगी” के रूप में किसी मानसिक स्वास्थ्य स्थापन में व्यक्ति के भर्ती होने के संबंध में प्रक्रिया निर्धारित करता है व ऐसी प्रक्रिया से ही स्पष्ट है कि इसमें न्यायालय की किसी अनुमति/आदेश की कहीं आवश्यकता नहीं है। मनोरोगी को उपचार, पुनर्वास व देखरेख हेतु निरसित अधिनियम 1987 व अधिनियम 2017 के अंतर्गत मनोरोगियों के उपरोक्त वर्गीकरण के आधार पर प्रक्रिया में भिन्नता है।

### **स्वतंत्र रूप से विचरण करने वाले सहमति देने या स्वयं उपचार हेतु जाने में असमर्थ मनोरोगियों के संबंध में प्रक्रिया**

अधिनियम 2017 के अध्याय 13 में उपबंधित ऐसे मनोरोगियों, जो स्वतंत्र विधिक सहमति देने व स्वयं उपचार हेतु जाने में असमर्थ हैं और स्वतंत्र रूप से विचरण करने वाले हैं, को उपचार हेतु भेजने/भिजवाने की प्रक्रिया संक्षेप में बिन्दुवार इस प्रकार है—

1. पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी द्वारा धारा 100 (1) के अनुसार, अपने थाना क्षेत्र में किसी मनोरोगी है को संरक्षण में लिया जाना और ऐसे मनोरोगी और यदि वह स्वयं समझने में समर्थ न हो तो उसके नातेदार या मित्र/नामित प्रतिनिधि को, उसे संरक्षण में लेने के कारण सूचित करना। [धारा 100(2)]
2. संरक्षण में लिये गये ऐसे मनोरोगी व्यक्ति को यथाशीघ्र, संरक्षण में लेने के 24 घंटे के भीतर, नजदीकी लोक स्वास्थ्य देखरेख संस्थान (धारा 2(त) में परिभाषित) में उसके स्वास्थ्य के आंकलन हेतु ले जाना। [धारा 100(3)]
3. संरक्षण में लिये गये व्यक्ति को किसी भी परिस्थिति में पुलिस लॉकअप या जेल में नहीं रखा जाना। [धारा 100(4)]

4. लोक स्वास्थ्य देखरेख संस्थान के प्रभारी चिकित्साधिकारी द्वारा मनोरोगी व्यक्ति के स्वास्थ्य का आंकलन करना और परिस्थितियों को देखते हुए उसके मनोरोग के अनुसार उसकी आवश्यकताओं के अनुरूप कार्यवाही की जाना। [धारा 100(5)]
5. चिकित्साधिकारी अथवा लोक स्वास्थ्य देखरेख संस्थान के प्रभारी द्वारा आंकलन पश्चात् यह पाये जाने पर कि मनोरोग ऐसी डिग्री का नहीं है कि मनोरोगी को भर्ती किया जावे, वहाँ आंकलन की जानकारी पुलिस अधिकारी को देना तथा मनोरोगी को उसके घर या बेघर होने की स्थिति में स्थापित शासकीय संस्थान में ले जाना। [धारा 100(6)]
6. चिकित्साधिकारी अथवा लोक स्वास्थ्य देखरेख संस्थान के प्रभारी द्वारा आंकलन पश्चात् यह पाये जाने पर कि मनोरोग ऐसी डिग्री का है कि मनोरोगी को भर्ती करके उपचार आवश्यक है वहाँ उसे मानसिक स्वास्थ्य संस्थान में भर्ती कर उपचार करना। [धारा 100(5)]
7. चिकित्साधिकारी या उसके द्वारा अस्थायी रूप से नियुक्त मनोरोगी का नामित प्रतिनिधि ऐसे मनोरोगी को जिसे भर्ती रहकर उपचार की आवश्यकता है, अधिनियम 2017 की धारा 89 के अंतर्गत उसे उपचार हेतु भर्ती करवाने की कार्यवाही करेंगे।
8. जहां मनोरोगी व्यक्ति का उसके परिवार या रिश्तेदारों ने परित्याग कर दिया हो वहां सक्षम सरकार उसे उपयुक्त सहयोग उपलब्ध करवाएगी जिसमें उसे परिवार गृह में अधिकार और उसमें रहने के अधिकार के प्रयोग के लिए विधिक सहायता उपलब्ध करवाना भी सम्मिलित है। [धारा 19(2)]
9. मानसिक स्वास्थ्य संस्थान में मनोरोग के संबंध में उपचार ले रहे व्यक्ति के डिस्चार्ज के समय उपयुक्त व्यक्ति, जिसके साथ मनोरोगी डिस्चार्ज पश्चात् रहेगा, को मनोचिकित्सक उपयुक्त उपचार व सेवाओं के बारे में बताएगा और इस संबंध में एक प्लान भी तैयार करना सुनिश्चित करेगा। [धारा 98]
10. ऐसे मनोरोगी व्यक्ति, जो बेघर हैं या क्षेत्र में विचरण करते हुए पाए जाते हैं, के संबंध में संबंधित थाने पर गुम इंसान संबंधी प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की जाएगी और ऐसे थाने के प्रभारी का यह दायित्व होगा कि वह ऐसे व्यक्ति के परिवार को खोजे और उसे ऐसे व्यक्ति के बारे में जानकारी दे। [धारा 100(7)]

### **ऐसे मनोरोगी जिनके साथ दुर्व्यवहार किया जा रहा है या परित्याग किया जा रहा है के संबंध में प्रक्रिया**

1. पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी द्वारा उसके थाना क्षेत्र में निवासरत, कोई मनोरोगी व्यक्ति जिसके साथ दुर्व्यवहार किया जा रहा है या परित्याग किया गया है, के बारे में मजिस्ट्रेट को रिपोर्ट करना। [धारा 101(1)]
2. प्राइवेट व्यक्ति द्वारा किसी मनोरोगी, जिसके साथ उसकी देखरेख के लिए उत्तरदायी व्यक्ति द्वारा दुर्व्यवहार किया जा रहा है या परित्याग किया गया है, की सूचना पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी को देना। [धारा 101(2)]

3. किसी मनोरोगी के साथ दुर्व्यवहार या परित्याग किये जाने की रिपोर्ट पर या अन्यथा मजिस्ट्रेट द्वारा ऐसे मनोरोगी को उसके समक्ष प्रस्तुत करने का आदेश देना व उसके संबंध में धारा 102 के अनुसार आदेश पारित करना। [धारा 101(3)]
4. जहां कोई मनोरोगी या जो मनोरोगी हो सकता है मजिस्ट्रेट के समक्ष लाया जाता है वहां धारा 102(5) के अनुसार, मजिस्ट्रेट लिखित में यह आदेश कर सकता है कि :—
  - ए. ऐसे व्यक्ति को आंकलन और उपचार हेतु, यदि आवश्यक हो तो लोक मानसिक स्वास्थ्य स्थापना में भेजा जावे और मानसिक स्वास्थ्य स्थापना ऐसे व्यक्ति के संबंध में अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार कार्य करेगा; या
  - बी. मनोरोगी का किसी मानसिक स्वास्थ्य संस्थान में 10 दिन से अनधिक का प्रवेश प्राधिकृत करे ताकि चिकित्साधिकारी या मानसिक स्वास्थ्य संस्थान के प्रभारी ऐसे व्यक्ति का आंकलन कर उपयुक्त उपचार, यदि कोई हो, की योजना बना सके। ऐसी आंकलन अवधि की पूर्णता पर चिकित्साधिकारी या मानसिक स्वास्थ्य संस्थान के प्रभारी मजिस्ट्रेट को रिपोर्ट पेश करेंगे और ऐसे व्यक्ति के संबंध में अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार कार्यवाही की जावेगी।

### अधिनियम के अधीन अपराध

अधिनियम 2017 की धारा 106 अधिनियम या उसके अधीन बनाए गए नियमों या विनियमों के उपबंधों के उल्लंघन के लिए दण्ड का प्रावधान करती है। इस प्रावधान अनुसार प्रथम अपराध के लिए छः माह तक के कारावास या दस हजार रुपये तक के अर्थदण्ड या दोनों से दण्डनीय होने का प्रावधान है। इसी प्रकार किसी पश्चातवर्ती उल्लंघन के लिए कारावास से जिसकी अवधि दो वर्ष तक की हो सकेगी या अर्थदण्ड, जो पचास हजार रुपये से कम का नहीं होगा किन्तु जो पांच लाख रुपये तक का हो सकेगा या दोनों से, दण्डनीय होने का प्रावधान किया गया है।

इस प्रावधान या अधिनियम 2017 के किसी अन्य प्रावधान में धारा 106 के अपराध के संज्ञेय/असंज्ञेय होने, जमानतीय/अजमानतीय होने, शमनीय/अशमनीय होने, किस न्यायालय द्वारा विचारणीय होंगे इसके संबंध में कोई प्रावधान नहीं है। अतः धारा 4 दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 के प्रावधान के प्रकाश में दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की अनुसूची 1 के भाग दो के प्रावधान प्रभावी होंगे। तदनुसार अधिनियम 2017 की धारा 106 के अंतर्गत आने वाले अपराध असंज्ञेय व जमानतीय हैं एवं किसी भी मजिस्ट्रेट द्वारा विचारणीय हैं। साथ ही इनके शमनीय होने का कोई प्रावधान नहीं होने से ऐसे अपराध अशमनीय हैं।

### न्यायिक कार्यवाही में व्यक्ति की मानसिक रुग्णता का विनिश्चय

इस संबंध में अधिनियम 2017 की धारा 105 के प्रावधान महत्वपूर्ण हैं। जो इस प्रकार है—

**धारा 105. न्यायिक प्रक्रिया में मानसिक रुग्णता का प्रश्न.—** यदि किसी सक्षम न्यायालय के समक्ष किसी न्यायिक प्रक्रिया के दौरान मानसिक रुग्णता का सबूत प्रस्तुत किया जाता है और अन्य पक्षकार द्वारा उसे चुनौती

दी जाती है तो न्यायालय उसे और संवीक्षा के लिए संबद्ध बोर्ड को निर्दिष्ट करेगा और बोर्ड, स्वयं या विशेषज्ञों की समिति द्वारा उस व्यक्ति का जिसके बारे में मानसिक रूग्णता से ग्रस्त होना अभिकथित है, परीक्षण करने के पश्चात् न्यायालय को अपनी राय देगा।

अधिनियम 2017 की धारा 120 के अनुसार, इसके प्रावधान अन्य किसी विधि के उपबंधों पर अधिमान प्राप्त हैं। अधिनियम 2017 की धारा 3 किसी व्यक्ति की मानसिक रूग्णता का निर्धारण किस तरह से, कब किया जाएगा इस संबंध में प्रावधान करती है। अधिनियम 2017 के प्रभावशील होने के पश्चात् किसी सक्षम न्यायालय के समक्ष न्यायिक प्रक्रिया में किसी व्यक्ति की मानसिक रूग्णता से ग्रस्त होने का प्रश्न उत्पन्न होने पर इस संबंध में आगामी जांच के लिए उसे संबंधित बोर्ड को भेजेगा। इस संबंध में बोर्ड संबंधित व्यक्ति के परीक्षण पश्चात् उसके संबंध में अपना अभिमत न्यायालय को देगा।

अधिनियम 2017 के प्रभावशील होने के पश्चात् किसी सक्षम न्यायालय (सिविल/आपराधिक/अन्य) के समक्ष की न्यायिक कार्यवाही में किसी व्यक्ति के मानसिक रूग्ण होने का सबूत एक पक्ष द्वारा रखा जाता है और दूसरे पक्ष द्वारा उसका विरोध किया जाता है, तो वहां ऐसे न्यायालय को ऐसे व्यक्ति की मानसिक रूग्णता की जांच हेतु बोर्ड को भेजना होगा।

### **धारा 309 भारतीय दण्ड संहिता के अधीन अपराध के लिए विशेष प्रावधान**

अधिनियम 2017 की धारा 115 में भारतीय दण्ड संहिता की धारा 309 के अधीन अपराध के लिए “गंभीर तनाव की उपधारणा” का प्रावधान किया गया है। धारा 115 इस प्रकार है—

#### **धारा 115. आत्महत्या के प्रयास के मामले में गंभीर तनाव की उपधारणा.—**

(1) धारा 309 भारतीय दण्ड संहिता में किसी बात के होते हुए भी कोई व्यक्ति जो आत्महत्या का प्रयास करता है को, जब तक की अन्यथा साबित न हो, गंभीर तनाव में होना उपधारित किया जाएगा और वह उस संहिता के अधीन विचारित और दण्डित नहीं किया जाएगा।

(2) समुचित प्राधिकारी का यह दायित्व होगा कि वे गंभीर तनाव वाले व्यक्ति जिसने आत्महत्या का प्रयास किया है, की पुनः आत्महत्या के प्रयास के संकट को कम करने के लिए ऐसे व्यक्ति को देखरेख, उपचार और पुनर्वास प्रदान करें।

अधिनियम 2017 की धारा 115 के प्रावधान धारा 309 भारतीय दण्ड संहिता के अपराध के संबंध में विचारण और दण्ड देने का निषेध करती है। अधिनियम 2017 की धारा 115 (सहपठित धारा 120) जो धारा 309 भारतीय दण्ड संहिता के प्रावधानों को वस्तुतः अप्रभावी कर देती है, की वैधानिकता एवं औचित्य के संबंध में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा *Red Lynx Confederation v. Union of India & ors.* (Special Leave to Appeal (Crl.) No. 3185/2020, order dated 11.09.2020) के मामले में संज्ञान लिया गया है। इस याचिका को तथा धारा 309 भारतीय दण्ड

संहिता की वैधानिकता के संबंध में लंबित अन्य याचिकाओं के एक साथ सुनवाई हेतु रखने का आदेश किया है। यह मामला अभी लंबित है।

जब तक उपरोक्त मामले में कोई निर्णय नहीं आता है, तब तक अधिनियम 2017 की धारा 115 के अनुसार धारा 309 भारतीय दण्ड संहिता के अधीन अपराध का विचारण आस्थगित (defer) किया जाना युक्तियुक्त प्रतीत होता है क्योंकि यहां विचारण भी निषेधित है।

### **अन्य सुसंगत प्रावधान व मानसिक रुग्ण व्यक्ति के संबंध में उनकी प्रयोज्यता**

दो केन्द्रीय अधिनियम व उनके प्रावधान इस संबंध में महत्वपूर्ण हैं :-

1. The National Trust for the Welfare of Persons with Autism, Cerebral Palsy, Mental Retardation and Multiple Disabilities Act, 1999
2. Rights of Persons with Disabilities Act, 2016

उक्त अधिनियम 1999 की धारा 2 (जे) मानसिक निर्योग्यता (Mental Retardation) को निम्नानुसार परिभाषित करती है :-

“persons with disability” means a person suffering from any of the conditions relating to autism, cerebral palsy, mental retardation or a combination of any two or more of such conditions and includes a person suffering from severe multiple disability;

अधिनियम 2016 की धारा 2 (यग) व इसकी अनुसूची में वर्णित विनिर्दिष्ट निर्योग्यताओं में सरल क्रमांक 3 में मानसिक व्यवहार (Mental behaviour) को निर्योग्यता के रूप में अंकित करते हुए निम्नानुसार परिभाषित किया गया है :-

3. Mental behaviour “mental illness” means a substantial disorder of thinking, mood, perception, orientation or memory that grossly impairs judgment, behaviour, capacity to recognise reality or ability to meet the ordinary demands of life, but does not include retardation which is a condition of arrested or incomplete development of mind of a person, specially characterised by subnormality of intelligence.

इन दोनों अधिनियमों में दी गयी उक्त परिभाषा को अधिनियम 2017 में दी गयी मानसिक रुग्णता की परिभाषा के साथ देखने पर किसी एक में परिभाषित श्रेणी में आने वाला व्यक्ति दूसरी परिभाषा में भी आने वाला प्रकट होता है और तब इन दोनों अधिनियमों के समस्त लाभकारी प्रावधान अधिनियम 2017 के अंतर्गत आने वाले मानसिक रुग्ण व्यक्तियों के लिए भी लागू होंगे। अतः न्यायालय को उनके समक्ष की प्रक्रिया में इन दोनों अधिनियमों के प्रावधानों का लाभ, प्रक्रियागत विशिष्टियों को ध्यान में रखते हुए देने पर विचार करना चाहिए।



## **DOMESTIC VIOLENCE ACT : KEY ISSUES AND EMERGING TRENDS**

**Tajinder Singh Ajmani**  
OSD, MPSJA

The very object of the Protection of Women from Domestic Violence Act, 2005 (in short “the D.V. Act”) is to provide for a remedy under the civil law to protect women from being victims of domestic violence and to prevent occurrence of domestic violence in the society. The statutory scheme covers those women who are or have been in a relationship with the abuser where both parties have lived together in a shared household and are related by consanguinity, marriage or through a relationship in the nature of marriage or adoption. In addition, relationships with family members living together as a joint family are also included. Even those women who are sisters, widows, mothers, single women or living with the abuser are entitled to legal protection under this law. It defines the expression “domestic violence” to include actual abuse or threat or abuse that is physical, sexual, verbal, emotional or economic. Harassment by way of unlawful dowry demands to the woman or her relatives would also be covered under this definition.

### **Violence committed prior to passing the D.V. Act**

In *V.D. Bhanot v. Savita Bhanot*, (2012) 3 SCC 183, the Supreme Court held that the conduct of the parties even prior to the coming into force of the D.V. Act could be taken into consideration while passing an order under sections 18, 19 and 20 thereof. The wife who had shared a household in the past, but was no longer residing with her husband can file a petition u/s 12, if subjected to any act of domestic violence.

An act of domestic violence once committed, subsequent decree of divorce will not deny the benefit to which the aggrieved person is entitled under the D.V. Act. The unsuccessful divorce proceedings cannot adversely affect the maintainability of application filed by the aggrieved person under the D.V. Act. In *Juveria Abdul Majid Patni v. Atif Iqbal Mansoori*, (2014) 10 SCC 736 (in the matter of muslim women), it has been held that even if it is accepted that she has obtained *ex parte Khula* (divorce) under the Muslim Personal Law, the petition u/s 12 of the D.V. Act is maintainable.

### **Live-in-relationship**

The definition of “domestic relationship” includes ‘a relationship in the nature of marriage’. Whether live-in relationship also comes under the definition, this aspect has been considered in *D.Velusamy v. D. Patchaiammal*, AIR 2011 SC 479 wherein the Apex Court has observed that not all live-in relationships will amount to a relationship in the nature of marriage to

get the benefit of the D.V. Act; to get such benefit, the conditions must be satisfied, and this has to be proved by evidence.

In *Indra Sarma v. V. K. V. Sarma*, AIR 2014 SC 309, where the women entered into a live-in relationship with the male knowing that he was a married person, in that situation, the Supreme Court categorically observed thus:

“We may note that, in the instant case, there is no necessity to rebut the presumption, since the appellant was aware that the respondent was a married person even before the commencement of their relationship, hence the status of the appellant is that of a concubine or a mistress, who cannot enter into relationship in the nature of a marriage. The long-standing relationship as a concubine, though not a relationship in the nature of a marriage, of course, may at times, deserves protection because that woman might not be financially independent, but we are afraid that the DV Act does not take care of such relationships which may perhaps call for an amendment of the definition of section 2(f) of the DV Act, which is restrictive and exhaustive.... Parliament has to ponder over these issues, bring in proper legislation or make a proper amendment of the Act, so that women and the children born out of such kinds of relationships be protected, though those types of relationship might not be a relationship in the nature of a marriage.”

In *Indra Sarma* (supra), some representative guidelines for testing under what circumstances a live-in-relationship will fall within the expression ‘relationship in the nature of marriage’ u/s 2(f) of the D.V. Act given as below;

- i. **Duration of period of relationship:** Section 2(f) of the DV Act has used the expression ‘at any point of time,’ which means a reasonable period of time to maintain and continue a relationship which may vary from case to case, depending upon the fact situation.
- ii. **Shared household:** The expression has been defined u/s 2(s) of the DV Act.
- iii. **Pooling of Resources and Financial Arrangements:** Supporting each other, or any one of them, financially, sharing bank accounts, acquiring immovable properties in joint names or in the name of the woman, long term investments in business, shares in separate and joint names, so as to have a long standing relationship, may be a guiding factor.



- iv. **Domestic Arrangements:** Entrusting the responsibility, especially on the woman to run the home, do the household activities like cleaning, cooking, maintaining or up keeping the house, etc. is an indication of a relationship in the nature of marriage.
- v. **Sexual Relationship:** Marriage like relationship refers to sexual relationship, not just for pleasure, but for emotional and intimate relationship, for procreation of children, so as to give emotional support, companionship and also material affection, caring etc.
- vi. **Children:** Having children is a strong indication of a relationship in the nature of marriage. Parties, therefore, intend to have a long standing relationship. Sharing the responsibility for bringing up and supporting them is also a strong indication.
- vii. **Socialisation in public:** Holding out to the public and socialising with friends, relations and others, as if they are husband and wife is a strong circumstance to hold that the relationship is in the nature of marriage.
- viii. **Intention and conduct of the parties:** Common intention of parties as to what their relationship is to be and to involve, and as to their respective roles and responsibilities, primarily determines the nature of that relationship.

Therefore, women in live-in relationship are also entitled to all the reliefs provided in the said Act. But under what circumstances a live-in-relationship will fall within the expression 'relationship in the nature of marriage' shall be determined looking to the facts of every case by applying aforementioned guiding principle.

#### **Relationship-adult male person – Constitutional validity**

"Respondent" is defined in section 2(q) of the D.V. Act which means any adult male person who is, or has been, in a domestic relationship with the aggrieved person. Constitutional validity of adult male person as respondent was examined in *Hiral P. Harsora and ors. v. Kusum Narottamdas Harsora and ors*, **AIR 2016 SC 4774** on the following grounds;

(i) Under Section 18(b), when a protection order is given to the aggrieved person, the "respondent" is prohibited from aiding or abetting the commission of acts of domestic violence. This again would not take within its ken females such as daughters-in-law and sisters-in-law, who may be aiding or abetting the commission of domestic violence, and would again stultify the reach of such protection orders.

(ii) Section 19(1)(c) makes it clear that the Magistrate may pass a residence order, that order will be toothless unless the relatives, which include female relatives of the respondent, are also bound by it.

(iii) In the case of a wife or a common law wife complaining of domestic violence, the husband's relatives including mother-in-law and sister-in-law can be arrayed as respondents and effective orders passed against them. But in the case of a mother-in-law or sister-in-law who is an aggrieved person, the respondent can only be an "adult male person" and since his relatives are not within the main part of the definition of respondent in section 2(q), residence orders passed by the Magistrate under section 19(1)(c) against female relatives of such person would be unenforceable as they cannot be made parties to petitions under the Act.

(iv) As per section 20, Magistrate may direct the respondent to pay monetary relief to the aggrieved person. If the respondent is only to be an "adult male person", compensation due from a daughter-in-law to a mother-in-law for domestic violence inflicted would not be available, whereas in a converse case, the daughter-in-law, being a wife, would be covered by the proviso to Section 2(q) and would consequently be entitled to monetary relief against her husband and his female relatives, which includes the mother-in-law.

(v) As per section 26, reliefs available under sections 18 to 22 may also be sought in any legal proceeding before a civil court, family court or criminal court. Thus, an invidious discrimination will result, depending upon whether the aggrieved person chooses to institute proceedings under the D.V. Act or chooses to add to the reliefs available in either a pending proceeding or a later proceeding in a civil court, family court or criminal court.

(vi) It is not difficult to conceive of a non-adult 16 or 17 year old member of a household who can aid or abet the commission of acts of domestic violence, or who can evict or help in evicting or excluding from a shared household an aggrieved person. Also, a residence order which may be passed under section 19(1)(c) can get stultified if a 16 or 17 year old relative enters the portion of the shared household in which the aggrieved person resides after a restraint order is passed against the respondent and any of his adult relatives.

On the basis of aforementioned reasons, Supreme Court held as under [*Hiral P. Harsora* (supra)]:

"We, therefore, set aside the impugned judgment of the Bombay High Court and declare that the words "adult male" in section 2(q) of the D V Act will stand deleted since these words do not square with Article 14 of the Constitution of India. Consequently, the proviso to section 2(q), being rendered otiose, also stands deleted".

Applying the principle of severability, the Apex Court also made it clear that having struck down the expression “adult male” in section 2(q) of the D.V. Act, the rest of the Act is left intact and can be enforced to achieve the object of the legislation without the offending words u/s 2(q) of the D.V. Act. After the judgment of *Hiral P. Harsora* (supra) the definition of “respondent” includes not only male but female members also.

### **Shared household**

Nature and scope of “shared household” has been considered by the three-Judge Bench of the Supreme Court in *Satish Chander Ahuja v. Sneha Ahuja*, AIR 2020 SC 5397 and observed as under;

(i) it is not requirement of law that aggrieved person may either own the premises jointly or singly or by tenanting it jointly or singly;

(ii) the household may belong to a joint family of which the Respondent is a member irrespective of whether the Respondent or the aggrieved person has any right, title or interest in the shared household; and

(iii) the shared household may either be owned or tenanted by the Respondent singly or jointly.

On the basis of aforementioned observation Supreme Court held that [*Satish Chander Ahuja* (supra)]

“We are of the view that this Court in *S.R. Batra v. Taruna Batra*, (2007) 3 SCC 169 although noticed the definition of shared household as given in section 2(s) but did not advert to different parts of the definition which makes it clear that for a shared household there is no such requirement that the house may be owned singly or jointly by the husband or taken on rent by the husband. The observation of this Court in *S.R. Batra* (supra) that definition of shared household in section 2(s) is not very happily worded and it has to be interpreted, which is sensible and does not lead to chaos in the society also does not commend us. The definition of shared household is clear and exhaustive definition as observed by us. The object and purpose of the Act was to grant a right to aggrieved person, a woman of residence in shared household. The interpretation which is put by this Court in *S.R. Batra* (supra) if accepted shall clearly frustrate the object and purpose of the Act. We, thus, are of the opinion that the interpretation of definition of shared household as put by this Court in *S.R. Batra* (supra) is not correct interpretation and the said judgment does not lay down the correct law”.

## Procedure

The Central Government in exercise of power conferred by section 37 of the said Act framed Rules namely; the Protection of Women from Domestic Violence Rules, 2006 (hereinafter referred to as the D.V. Rules). These Rules provides procedure to be adopted while dealing with the applications under various sections of the D.V. Act. The same may be looked into summarily as under:

- i. Rule 5 deals with Domestic Incident Report (DIR) which is to be submitted by Protection Officer in “Form-I” before any order is passed under section 12, the Magistrate shall take into consideration any DIR received by him from the Protection Officer or the Service Provider. In *Maroti Dewaji Lande v. Sau. Ganguba*, 2012 CrLJ 87, the Bombay High Court held that if there is a Domestic Incident Report that is received by the Magistrate either from the Protection Officer or from the Service Provider then only it is obligatory for the Magistrate to take note of the same before passing final order of the application made by the aggrieved person. Similarly in *Anil v. Sudesh*, 2014 Cr.L.J. 2025, the Punjab and Haryana High Court held that Domestic Incident Report, could be taken into consideration only if any such report had been received. If no report of domestic incident is received by Magistrate from Protection Officer or Service Provider then filing of same is not necessary. Therefore, if DIR is not available on record, the Magistrate can pass an order without DIR.
- ii. In view of sub-rule (1) of rule 6, an application under section 12 of the D.V. Act is required to be filed in “Form-II”. The said form is exhaustive in which the aggrieved person is required to set out the specific nature of reliefs claimed with particular reference to the reliefs provided u/s 17 to 22.  
  
Use of words “as nearly as possible thereto” in section 12 and rule 6 shows that the intention of the legislature was not to reject complaint for not filing in prescribed “Form-II” (See: *Milan Kumar Singh and anr. v. State of U.P. and anr.*, 2007 CriLJ 4742).
- iii. Rule 7 provides that every affidavit for obtaining an ex parte order under sub-section (2) of section 23 shall be filed in “Form-III”. On the basis of the affidavit, Magistrate can grant *ex parte ad-interim* relief. However, Magistrate will have to consider the nature of the reliefs sought in the main application u/s 12(1).

In *Jagadesan v. State of Tamil Nadu and ors.*, 2016 CrLJ 1, the Madras High Court has held that on the basis of the material on record, it disclosed that the wife has made a specific declaration in the application filed u/s 12 of the D.V. Act and signed the verification

column in the presence of a Protection Officer. In that situation, it was held that an application filed u/s 23 of the Act, cannot be dismissed, for not filing an affidavit.

- iv. Sub-section (2) of section 23 read with rule 7 clearly shows that there is no requirement of filing a separate application for interim relief u/s 23. However, before granting an interim relief, an opportunity of being heard has to be accorded to the respondent. The respondent can always file a reply to the affidavit. [See: *Vishal Damodar Patil v. Vishakha Vishal Patil*, 2009 CriLJ 107].

The procedure to be followed u/s 125 Code of Criminal Procedure, 1973 (in short: Cr.P.C.) shall be as per section 126 Cr.P.C. which includes permitting the parties to lead evidence. The Court in its discretion can permit parties to adduce evidence by filing affidavit in proceedings u/s 12 and permit cross-examination to test veracity of the deponent. In this regard, we may see *Ankit Subhash Tupe v. Mrs. Piyusha Aniket Tupe and anr*, 2018 CriLJ 3316.

It cannot be said that the Court dealing with the application under D.V. Act has no power or jurisdiction to allow the amendment of the said application. If the amendment becomes necessary in view of subsequent events or to avoid multiplicity of litigation, Court will have power to permit such an amendment. It is said that procedure is the handmaid of justice and has to come to the aid of the justice rather than defeating it (See: *Kunapareddy alias Nookala Shanka Balaji v. Kunapareddy Swarna Kumari and others*, AIR 2016 SC 2519).

### **Service of Notice**

As per rule 12 of the D.V. Rules, notice shall contain the names of the person, nature of domestic violence and such other details which may facilitate the identification of person concerned. Notice shall be served by the Protection Officer or any other person directed by him. The notice shall be delivered to any person in charge of such place. In case delivery is not possible, it shall be pasted at a conspicuous place on the premises. For service of notice, Order V of the Code of Civil Procedure Code, 1908 (in short: C.P.C.) or provisions under Chapter VI of Cr.P.C. as far as practicable may be adopted, in addition the Court may direct any other steps necessary with a view to expediting the proceedings to adhere to the time limit provided in the D.V. Act.

### **Settlement**

Section 14 of the D.V. Act provides that Magistrate may at any stage of the proceedings direct parties to undergo counselling with any member of a Service Provider and he shall fix the next date of hearing of the case within a period not exceeding two months. Rule 14 of the D.V. Rules provides for procedure to be followed by the Counsellor. As per sub rule 7, if the aggrieved person so desires, the Counsellor shall make efforts of arriving at a settlement of the matter and

shall record the terms of settlement and get the same endorsed by the parties. As per sub rule 11, the Counselor shall submit his report to the Magistrate expeditiously as far as possible for appropriate action. Sub rule 13 expects from the Court to make a preliminary inquiry from the parties and after recording reasons for satisfaction which may include undertaking by the respondents to refrain from repeating acts of domestic violence accept the terms with or without conditions. The Court thereafter shall pass an order of settlement in the case.

### **Maintenance - Legal obligation**

The amount of maintenance awarded by the Magistrate is an amount which an aggrieved person requires to meet necessities of life and for survival. Such amount is not limited to household necessities but also includes payment of rental related to the shared household. In the case of *Shamima Farooqui v. Shahid Khan*, AIR 2015 SC 2025, the Supreme Court has observed as follows :-

“Sometimes, a plea is advanced by the husband that he does not have the means to pay, for he does not have a job or his business is not doing well. These are only bald excuses and, in fact, they have no acceptability in law. If the husband is healthy, able bodied and is in a position to support himself, he is under the legal obligation to support his wife, for wife’s right to receive maintenance under Section 125 Cr.P.C., unless disqualified, is an absolute right.”

### **Return of Stridhan**

Aggrieved person has a right to file an application to return of stridhan. In *Krishna Bhattacharjee v. Sarathi Choudhury and anr.*, 2016 CrLJ 330, it has been held that the concept of “continuing offence” gets attracted from the date of deprivation of stridhan, for neither the husband nor any other family members can have any right over the stridhan and they remain the custodians. As long as the status of the aggrieved person remains, the wife can always put forth her claim u/s 12 of the D.V. Act and the application is not barred by limitation.

### **Responsibility of other relatives**

An application for maintenance against the relative of deceased husband filed by the aggrieved woman on the fact that the house where she resides belongs to a joint family, her brother-in-law and husband carried on a joint business, looking to the facts of the case, the Supreme Court in *Ajay Kumar v. Lata alias Sharuti and ors.*, AIR 2019 SC 2600 held that at this stage, for the purpose of an interim order for maintenance, there was material which justifies the issuance of a direction in regard to the payment of maintenance. However in a case of different facts where application is filed against husband along with

other relatives, the three Judge Bench of Supreme Court in *Shyamlal Devda and ors. v. Parimala*, 2020 Cr LJ 2114 held as:

“There are no specific allegations as to how other relatives of appellant No.14 have caused the acts of domestic violence. It is also not known as to how other relatives who are residents of Gujarat and Rajasthan can be held responsible for award of monetary relief to the respondent. The High Court was not right in saying that there was *prima facie* case against the other appellants No.3 to 13. Since there are no specific allegations against appellants No.3 to 13, the criminal case of domestic violence against them cannot be continued and is liable to be quashed”.

### **Determination of rights in other judicial proceedings**

Any relief available under sections 18, 19, 20, 21 and 22 sought by aggrieved person in any legal proceedings before a Civil Court, Family Court or a Criminal Court including the residence order, even in civil proceedings against the aggrieved person, the plaintiff can be treated as respondent. However, at the same time, it is to be observed that the aggrieved person has to satisfy by leading evidence that domestic violence has taken place.

### **Eviction of aggrieved person in due course of law**

In section 17(2) of the D.V. Act contemplates that “aggrieved person shall not be evicted or excluded from the shared household save in accordance with procedure established by law”. Thus, there is neither any express nor implied bar in initiation of civil proceedings in a Court of competent jurisdiction. In appropriate case, the competent Court can decide the claim in a properly instituted suit by the owner as to whether the women need to be excluded or evicted from the shared household. One most common example for eviction and exclusion may be when the aggrieved person is provided same level of alternate accommodation or payment of rent as contemplated by section 19 sub-section (f) itself.

### **Orders passed under DV Act binding in civil court proceedings**

Whether the orders interim or final passed under D.V. Act are binding in Civil Court proceedings and Civil Court could not have taken any decision contrary to directions issued in D.V. Act? On conjoint reading of sections 12(2), 17, 19, 20, 22, 23, 25, 26 and 28 of the D.V. Act, it can safely be said that the proceedings under the D.V. Act and proceedings before a Civil Court, Family Court or a Criminal Court, as mentioned in section 26 of the D.V. Act are independent proceedings. However, the findings/orders passed by one forum can be considered by another forum. The Civil Court has to take into consideration the relief already granted by the Magistrate in the proceedings under the D.V. Act

and vice-versa. The judgment or order of Criminal Court granting an interim or final relief u/s 19 of D.V. Act are relevant within the meaning of section 43 of the Evidence Act and can be referred to and looked into by the Civil Court as per the provisions of the Evidence Act.

### **Breach of protection order**

As per rule 15 of the D.V. Rules, any resistance to the enforcement of the orders by the respondent or any other person shall be deemed to be a breach of protection or interim protection order. An aggrieved person may report a breach of protection order or interim order to the Protection Officer who shall forward a copy to the concerned Magistrate for appropriate order. If the aggrieved person makes a complaint directly to the Magistrate or Police, a breach of protection order shall be immediately reported to the local Police Station and shall be dealt with as a cognizable offence as provided u/s 31 of the D.V. Act. In *Surya Prakash v. Smt. Rachna*, 2018 CriLJ 2545, the Division Bench of the High Court of Madhya Pradesh held that any instance of domestic violence, for which affirmative or prohibitory order has been passed u/s 18 of the D.V. Act, provision of section 31 can be invoked. Non-payment of maintenance allowance, thus, would be treated as breach of 'protection order'. When charges are framed u/s 31 or any other offences not summarily triable, the Court may separate the proceedings.

### **Execution**

Section 20(4) of the D.V. Act provides that the Magistrate shall send a copy of the order for monetary relief to the In-charge of the police station within the local limits of whose jurisdiction the respondent resides. It is pertinent to mention here that sub-rule 5 of rule 6 of the D.V. Rules provides that the orders of Magistrate shall be enforced in the same manner as laid down in section 125 Cr.P.C. Thus, if any person so ordered to pay the maintenance fails to comply with the order the Magisterial Court of the competent jurisdiction, he is bound to issue warrant for levying the amount due in the manner for levying fines as per Section 421 Cr.P.C and may send the defaulter respondent to civil prison as per the procedure contemplated u/s 125 Cr.P.C. In *Manoj Pillai and anr. v. Smt. Prasita Manoj Pillai*, 2017 CriLJ 4174, it has been held that section 28 of the D.V. Act lays down that the Courts shall be governed by the general provisions of Cr.P.C. The aggrieved person may take recourse to provisions of "Chapter VII-A" of Cr.P.C. to get the order executed. Regarding execution, certain obligations imposed on the Protection Officer as given below ;

- i. As per Rule 10 (c) Protection Officer restore the possession of the personal effects including gift and jewellery of the aggrieved person and the shared household to the aggrieved person



- ii. As per rule 10(d) the Protection Officer assist the aggrieved person to regain custody of children and secured the rights to visit them under his supervision as may be directed by the court.
- iii. As per rule 10 (e) Protection Officer assist the court for enforcement of order in proceedings u/s 12, 18, 19, 20, 21, 22 and 23 of the D.V. Act in the manner directed by the court.

### **Limitation**

It has been guided in *J. Shyam Babu v. State of Telangana, 2017 CriLJ 4076* that to initiate proceedings and to take cognizance for the reliefs to be claimed outcome of domestic relationship u/s 12 r/w 18 to 23 of the D.V. Act, the question of application of period of limitation under Chapter XXXVI of Cr.P.C. does not arise and the same has no application but far from what in the D.V. Act provided in case of non-payment of compensation awarded or for non-implementation of the orders passed u/s 12, 18 to 23, to enforce the same for such violation which tantamount to an offence to cognizance of which the period of limitation provided by Chapter XXXVI of Cr.P.C. arises and not otherwise.

### **Appeal**

Section 29 of the D.V. Act provides that there shall lie an appeal to the Court of Session within thirty days from the date on which the order made by the Magistrate is served on the aggrieved person or the respondent, as the case may be, whichever is later. An appeal will lie u/s 29 against the final order passed by the Magistrate under sub-section (1) of section 12 of the D.V. Act. An appeal will also lie against orders passed under sub-section (1) and sub-section (2) of the section 23 of the D.V. Act which are passed by the Magistrate. However, while dealing with an appeal against the order passed u/s 23, the Appellate Court will usually not interfere with the exercise of discretion by the learned Magistrate. The Appellate Court will interfere only if it is found that the discretion has been exercised arbitrarily, capriciously, perversely or if it is found that the Court has ignored settled principles of law regulating grant or refusal of interim relief.

An appeal u/s 29 will not be maintainable against purely procedural orders which do not decide or determine the rights and liabilities of the parties. Order directing personal attendance of applicants is only interlocutory procedural order appeal u/s 29 of the D.V. Act would not be maintainable.

Whether the Sessions Court in exercise of its jurisdiction u/s 29 of the D.V. Act has any power to pass interim orders staying the execution of the order appealed before? Although, this aspect has not been directly argued in the case of *Shalu Ojha v. Prashant Ojha, 2015 CriLJ 63* but the Apex Court has expressed vital observation in this regard which is as follows;

“We only note that there is no express grant of power conferred on the Sessions Court while such power is expressly conferred on the Magistrate under section 23. Apart from that, the power to grant interim orders is not always inherent in every Court. Such powers are either expressly conferred or implied in certain circumstances. This Court in *Super Cassettes Industries Limited v. Music Broadcast Private Limited*, (2012) 5 SCC 488 : AIR 2012 SC 2144, examined this question in detail”.

In the case of *Sabina Sahdev and ors. v. Vidur Sahdev*, 2019 CriLJ 218, a Division Bench of the Delhi High Court while answering the reference, has held that an appeal under section 29 of the D.V. Act would be entertained and heard without any pre-condition of deposit of the arrears of maintenance. It further held that the pendency of such appeal shall not operate as a stay of the operation of the order granting interim maintenance.

The provisions of the Limitation Act are applicable to appeals filed under the D.V. Act. In *K. M. Revanasiddeshwara v. Smt. K. M. Shylaja*, 2012 CriLJ 2142 it has been held that delay in filing appeal be condoned by invoking section 5 of the Limitation Act.

### **Conclusion**

The D.V. Act effectively protects the rights of women guaranteed under the Constitution who are victims of violence of any kind occurring within the family. After the judgment of *Hiral P. Harsora* (supra), no dilemma rests in this regard that the definition of respondent includes not only male but female members also. Similarly, definition of shared household is clear and exhaustive as per law laid down in *Satish Chander Ahuja* (supra) which indicates that for a shared household there is no such requirement that the house may be owned singly or jointly by the husband or taken on rent by the husband. It is pertinent to mention here that the object and purpose of the D.V. Act is to provide protection to women from domestic violence but at the same time, existence of marriage is equally important. Therefore, it is the pious obligation on Magistrate and Service Provider that effective steps should be taken regarding counseling between the parties in the initial stage of proceedings so that dispute is settled amicably.



## बालकों का पुनर्वास : एक बहुआयामी दृष्टिकोण

अनु सिंह

विशेष कर्तव्यस्थ अधिकारी,  
म.प्र. राज्य न्यायिक अकादमी

“The success of the Juvenile Justice law is not to be measured by the numbers of juveniles put behind the bars, but by the number of children reformed and rehabilitated by it.”

- Kailash Satyarthi

Nobel Peace Laureate

बच्चे राष्ट्र की सर्वश्रेष्ठ सम्पदा हैं। किसी भी राष्ट्र का भविष्य बच्चों के ही हाथ में है, परन्तु समाज में व्याप्त भिन्नताओं और सभी क्षेत्रों में समाज की उदासीनता के कारण इन भावी राष्ट्र निर्माताओं का विकास उचित रूप से नहीं हो पा रहा है, यही उदासीनता बाल अपचार का कारण है। बाल अपराध या किशोर अपराध एक गंभीर समस्या है, जो पूरी दुनिया की चिन्ता का अनन्त स्रोत बनती जा रही है। विकासशील व प्रगतिशील भारत में बच्चों का विकास योजना, अनुसंधान और कल्याण का प्रमुख बिन्दु होना चाहिए। परन्तु दुर्भाग्य से, ऐसा नहीं हो पा रहा है। दुर्यवहार और शोषण के विरुद्ध संरक्षित एक खुशहाल व स्वस्थ बचपन के संबंध में संवैधानिक प्रावधान और एक विस्तृत राष्ट्रीय नीति होने के उपरांत भी आज भारत वर्ष में अधिकांश बालक बिना उचित देखभाल के, संरक्षित व सार्थक बचपन से वंचित हैं।

भारतीय संविधान की प्रस्तावना, मौलिक अधिकारों व मौलिक कर्तव्यों में बाल अधिकारों की महत्ता परिलक्षित होती है। भारत बाल अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र घोषणा वर्ष 1959 का एक प्रमुख हस्ताक्षरकर्ता भी है। स्वास्थ्य और देखभाल के अधिकार, दुर्यवहार से सुरक्षा का अधिकार, शोषण से सुरक्षा का अधिकार, उपेक्षा से सुरक्षा के अधिकार, अभिव्यक्ति के अधिकार और पोषण के अधिकारों को अन्य अधिकारों सहित बच्चों के मूल अधिकारों के रूप में संरक्षित किया गया है। सन् 1974 में बाल अधिकारों को संरक्षित करने हेतु एक वृहत राष्ट्रीय नीति निर्मित की गई। इस प्रकार भारत सरकार के द्वारा सामाजिक विकास को सुनिश्चित करने के लिए बच्चों के पोषण और विकास की जिम्मेदारी ली गई। तद्द्वारा बच्चों को विकास के समान अवसर प्रदान करने का उद्घोष दिया गया। पुनः वर्ष 1990 में विश्व शिखर सम्मेलन में भी इसी प्रतिबद्धता को सुनिश्चित करने के लिए एक राष्ट्रीय नीति निर्मित की गई। युगों से बाल समस्याओं के उन्मूलन के प्रयास के उपरांत भी आज बच्चे इस परिवर्तित सामाजिक संवेदनाओं (social perception) में अतिदारुण दबाव का अनुभव कर रहे हैं। इसलिए आज भी समाज में बच्चों को विशिष्ट महत्व दिए जाने की आवश्यकता विद्यमान है।

इस प्रभाव को इस आधार पर भी अनुभव किया जा सकता है कि UNICEF के द्वारा वर्ष 2005 में विश्व में बालकों की प्रास्थिति के संदर्भ में जो रिपोर्ट प्रस्तुत की गई उसका शीर्षक “Child Under Threat” था।

किशोर न्याय तंत्र विधि के उल्लंघन के सम्पर्क में आने वाले बालकों की विशिष्ट आवश्यकताओं के अनुकूल ही तैयार किया गया है। इसका प्रमुख उद्देश्य विधि का उल्लंघन करने वाले बालकों को सुधारात्मक प्रयास के प्राथमिक निवारण तथा पुनर्वास व सामाजीकरण के माध्यम से द्वितीयक निवारण उपलब्ध कराया जाना है। इस कल्याणकारी राज्य (welfare state) में भविष्य अर्थात् बालकों की स्थिति के सुधार की संकल्पना को यर्थात् स्वरूप दिए जाने के लिए इस तंत्र से जुड़े सभी अंगों को अपने उत्तरदायित्वों, इस विधि की संरचना, इसके सिद्धांतों और हमारे द्वारा किए जा सकने वाले प्रयासों, उनके प्रभावों, प्रत्येक छोटे प्रयास की महत्ता को जानने की आवश्यकता विद्यमान है। दण्ड के विभिन्न सिद्धांत के समर्थन में कई तर्क विद्यमान हैं, परन्तु उन तर्कों से पृथक् इस राष्ट्र निर्माण के लिए एक उत्तरदायी नागरिक के निर्माण के प्रयास के उद्देश्य से इस सम्पूर्ण प्रक्रिया का विवेचन किया जाना आवश्यक है।

### पुनर्वास की अवधारणा एवं संकल्पना —

पुनर्वास की संकल्पना इस अवधारणा पर आधारित है कि आपराधिक व्यवहार कुछ कारकों के कारण होता है। इससे इन्कार नहीं किया जा सकता है कि स्वतंत्र इच्छा से कोई भी बालक विधि के उल्लंघन का चुनाव नहीं करता है। इसके विपरीत सामाजिक परिवेश, मनोवैज्ञानिक विकास, जीवन-यापन पद्धति, पारिवारिक समर्थन जैसे कारक व्यक्ति की प्रतिक्रिया को प्रभावित करते हैं। यद्यपि सभी मानव समान हैं, परन्तु उनकी प्रतिक्रिया करने का तरीका भिन्न है। अपराधजन्य विभिन्न कारक हो सकते हैं—जैसे माता-पिता के वात्सल्य और पर्यवेक्षण की कमी, अपराधी साथियों या सहकर्मियों से सम्पर्क, आवेगपूर्ण स्वभाव, वयस्क लोगों की तुलना में बालकों के अपराध में शामिल होने की अधिक संभावना, तर्क संगत निर्णय लेने में असमर्थता इत्यादि। इन सभी कारकों का सूक्ष्मता से विश्लेषण किया जाए तो यह स्पष्ट हो जाता है कि बालक विधि के उल्लंघन में या न्याय प्रणाली के सम्पर्क में तभी आता है, जब वह एक सुरक्षात्मक जाल (secured net) से बाहर आने के कारण वह एक संरक्षित व सुरक्षित बचपन के अधिकार से वंचित हो जाता है। अतएव उस बालक को तत्समय कठिन परिस्थितियों से संघर्षरत बालक माना जाना चाहिए। इसी परिप्रेक्ष्य में बालक की कमजोरियों व परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए उसकी समस्या को संबोधित करने का प्रयास भी किया जाना चाहिए।

### पुनर्वास : बालक का एक अंतर्निहित अधिकार (inherent right) —

संयुक्त राष्ट्र बालक अधिकार अधिवेशन, 1989 के अनुच्छेद 40 में यह प्रावधान है कि सभी राज्य दाण्डिक विधि के उल्लंघन में आने वाले अथवा ऐसा करने के संदिग्ध बालक के सामाजिक पुनर्वास को प्रोत्साहित करेंगे और बालक की गरिमा का पूरा ध्यान रखेंगे।

दाण्डिक विधि के उल्लंघन में आने वाले अथवा ऐसा करने के संदिग्ध बालक को कम से कम निम्नलिखित गारंटी होंगी :—

1. उसे विधि के अनुसार दोषी साबित होने तक निर्दोष माना जाना;
2. उसके या उसके माता-पिता या विधिक अभिभावकों के माध्यम से, और यदि उचित हो, तो उसके या उस पर आरोपित आरोपों के बचाव की तैयारी और प्रस्तुति में विधिक व अन्य उपयुक्त सहायता कराना;

3. निष्पक्ष सुनवाई में सक्षम, स्वतंत्र और निष्पक्ष प्राधिकारी या न्यायिक निकाय द्वारा बालक की रुचि, विशेष रूप से, उसकी आयु या स्थिति, उसके माता-पिता या विधिक अभिभावकों को ध्यान में रखते हुए निराकरण किया जाना;
4. साक्ष्य देने या अपराध स्वीकार करने के लिए मजबूर नहीं किया जाना;
5. प्रतिकूल साक्षियों का परीक्षण करने का अवसर देना;
6. दायिद्विक विधि का उल्लंघन पाए जाने पर निर्णय के विरुद्ध उच्च सक्षम, स्वतंत्र और निष्पक्ष प्राधिकारी या न्यायिक निकाय द्वारा समीक्षा किए जाने का अधिकार;
7. यदि बालक प्रयुक्त भाषा को समझ या बोल नहीं सकता है तो दुभाषिए की निःशुल्क सहायता अपलब्ध कराना;
8. कार्यवाही के समस्त प्रक्रम पर उसकी निजता का पूरा सम्मान किया जाना।

इसी संदर्भ में किशोर न्याय (बालकों की देखरेख एवं संरक्षण) अधिनियम, 2015 (एतस्मिन् पश्चात् 'अधिनियम 2015' से संबोधित) में भी धारा 3 (xiii) में अंतर्वर्तित पुनर्स्थापन और प्रत्यावर्तन का सिद्धांत अवलोकनीय है जिसके अनुसार "किशोर न्याय प्रणाली में प्रत्येक बालक को सबसे पहले अपने परिवार के साथ पुनः संयोजित होने और इस अधिनियम की परिधि के अधीन आने के पहले उसी सामाजिक-आर्थिक और सांस्कृतिक स्थिति, जिसमें वह था, प्रत्यावर्तित किए जाने का अधिकार प्राप्त होगा, जब तक ऐसा प्रत्यावर्तन अथवा प्रतिकार उसके सर्वोत्तम हित में न हो।"

### पुनर्वास और किशोर न्याय अधिनियम –

पुनर्वास अधिनियम 2015 की आत्मा है। यही वह धुरी है, जिसके लिए किशोर न्याय अधिनियम व नियम बनाए गए हैं। इस ध्येय को अधिनियम 2015 की उद्देशिका (Preamble) में निम्नलिखित शब्दों में रेखांकित किया गया है—

“विधि के विरोध में और देखरेख तथा संरक्षण की आवश्यकता में अभिकथित तथा पाये जाने वाले बालकों को उनकी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति करने उनकी समुचित देखरेख, संरक्षण, विकास, उपचार, सामाजिक पुनर्एकीकरण करने के लिए बालकों के सर्वोत्तम हित में यहाँ इसमें नीचे उपबन्धित प्रक्रियाओं तथा स्थापित संस्थाओं और निकायों के माध्यम से तथा उनसे सम्बन्धित मामलों का न्यायनिर्णयन और निपटारे में एक बाल-मित्रवत् दृष्टिकोण अपनाकर और उनके पुनर्वासन के लिए सम्बन्धित विधि का समेकन करने और उससे सम्बन्धित या उसके आनुषंगिक विषयों का संशोधन करने के लिए”

इस प्रकार पुनर्वास में प्रत्येक वह कार्य सम्मिलित है जो बालक की प्रतिष्ठा को पुनर्स्थापित करने के लिए आवश्यक है। लक्ष्य को अधिनियम 2015 की इस उद्देशिका के आलोक में देखा जाए तो इस अधिनियम के अंतर्गत विहित प्रक्रिया, विभिन्न आदेशों और आयामों को इस पुनर्वास के उद्देश्य की प्रतिपूर्ति के लिए उसी दृष्टिकोण से क्रियान्वित जाना चाहिए।

## पुनर्वास का विस्तार —

पुनर्वास के उद्देश्य की प्राप्ति के लिए अधिनियम 2015 में राज्य की समस्त संस्थाओं, न्यायपालिका, प्रशासन, पुलिस विभाग, वन विभाग, स्वास्थ्य विभाग, नगर स्वशासी निकाय, पंचायती राज निकाय, इत्यादि अर्थात् सभी निकायों के एक नेटवर्क की व्यवस्था की गई है। इस प्रकार विधि, समाज व परिस्थितियों से संघर्षरत बालक के पुनर्वास के लिए एक बहुआयामी दृष्टिकोण के विकास की आवश्यकता पर जोर दिया गया है। पुनर्वास भावनात्मक, शारीरिक, संबंधपरक, बौद्धिक, रचनात्मक, आध्यात्मिक सभी दृष्टिकोण से बालक के सामाजिक पुनर्एकीकरण की प्रक्रिया है। उचित समय पर हस्तक्षेप तथा मजबूत पुनर्वास प्रक्रिया ही किशोर अपराधों (Juvenile delinquency) के रोकथाम का एक कारगर उपाय भी है। यहाँ यह भी समझना आवश्यक है कि यह पुनर्वास आवश्यकता आधारित नहीं, वरन् बालक के अधिकारों पर आधारित है। पुनर्वास उस बालक का अधिकार है, जिसे राज्य उस स्थिति तक पहुंचने से निवारित करने में विफल रहा है।

## पुनर्वास पद्धति का निर्धारण —

इस पुनर्वास के महत्व के अर्थान्वयन से पूर्व इस उद्देश्य के क्रियान्वयन के समय मार्गदर्शित करने वाले (अधिनियम 2015 की धारा 3 में उल्लेखित) मूलभूत सिद्धांतों पर दृष्टिपात किया जाना आवश्यक है। अतएव किसी बालक विशेष के लिए उपयुक्त पुनर्वास पद्धति के चुनाव के पूर्व इन सिद्धांतों के आलोक में उसकी परिस्थितियों का विवेचन किया जाना चाहिए।

## पुनर्वास का वर्गीकरण —

बालक के विधि के उल्लंघन के सम्पर्क में आने से पहले व बाद में उसे समाज में कई विपरीत परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है। इसलिए उसके उपचार के लिए भी तत्काल कदम उठाए जाने चाहिए। बालक की परिस्थितियों को दृष्टिगत रखते हुए यह पुनर्वास संस्थागत व गैर संस्थागत दानों माध्यमों से हो सकता है। अतः इस विस्तृत प्रक्रिया को उचित/प्रभावपूर्ण रूप से वर्णन तथा इस लक्ष्य के संदर्भ में देखे जाने के उद्देश्य से पुनर्वास को निम्नलिखित वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है—

1. जांच के दौरान पुनर्वास।
2. जांच के उपरांत पुनर्वास।
3. संस्थागत पुनर्वास।
4. गैर-संस्थागत पुनर्वास।

### I. जांच के दौरान पुनर्वास —

पुनर्वास के सभी प्रकारों का ध्येय समान है, परंतु जांच के दौरान पुनर्वास के दौरान अन्य सिद्धांतों के साथ-साथ निर्दोषिता की उपधारणा को भी ध्यान में रखा जाना आवश्यक है। इस स्तर पर किसी भी ऐसे आयाम का चयन करना जो बालक को उस संस्था अथवा उसके सर्वोत्तम हित के चुनाव में संदेह उत्पन्न करता हो, पुनर्वास के प्रयास को विफल कर सकता है।

बालक के द्वारा विधि का उल्लंघन कारित किया गया अथवा नहीं, उसमें बालक की भागीदारी क्या थी, वह परिस्थितियां क्या थीं, जिसमें उल्लंघन किया गया है, इसका निर्धारण किया जाना शेष

होने से इस स्तर पर हम पुनर्वास को किसी परिस्थिति विशेष से सम्बद्ध नहीं कर सकते हैं। परंतु इस स्तर पर पुनर्वास के कदम अत्यंत महत्वपूर्ण हैं, यही वह आयाम है जो बालक के व्यवहार परिवर्तन, उसकी आस्था और किशोर न्याय तंत्र के साथ जुड़ने के तरीके के व्यक्तिगत चुनाव के लिए निर्णायक होते हैं। अतएव इस स्तर पर पुनर्वास के प्रयासों में निम्नलिखित प्रयास सम्मिलित हैं :-

- बाल मित्रवत् वातावरण।
- बालक की भागीदारी सुनिश्चित करने के प्रयास।
- गैर कलंककारी भावनाओं का समावेश।
- गरिमा और प्रतिभाओं का प्रोत्साहन।
- बालक की नीजता (privacy) को सुनिश्चित किया जाना।

अतः इस स्तर पर पुनर्वास में वे सारे प्रयास किए जाने चाहिए जो कि बालक को जांच के दौरान एक मैत्रीपूर्ण वातावरण प्रदान कर सकें। ऐसा वातावरण उसे अपनी समस्याओं को भूलकर इस तंत्र के साथ जुड़ने का अवसर प्रदान करता है। इससे वह बालक इस तंत्र की ईकाईयों अर्थात् परिविक्षा अधिकारी, प्रधान मजिस्ट्रेट, किशोर न्याय बोर्ड के सदस्यों आदि में विश्वास करने लगता है, जिससे वह उन्हें अपनी समस्याएं किसी भय या संकोच के बिना बता सकता है। इन प्रयासों के अंतिम उद्देश्य तथा उनके चुनाव के लिए अधिनियम 2015 में परिभाषित अत्यंत वृहद शब्दों व भावनाओं से ओत-प्रोत इन विस्तृत परिभाषाओं का अवलोकन किया जाना आवश्यक है—

**बाल मित्रवत्** — {धारा 2 (15)} से ऐसा कोई व्यवहार, आचरण, प्रथा, प्रक्रिया, दृष्टिकोण, वातावरण अथवा उपचार जो मानवीय, पर्याप्त और बालक के सर्वोत्तम हित में है, अभिप्रेत है।

**बालक के सर्वोत्तम हित** — {धारा 2 (9)} से बालक के संबंध में इसके मूलभूत अधिकारों तथा आवश्यकताओं, पहचान, सामाजिक भलाई की पूर्ति तथा शारीरिक, आवेशात्मक और बौद्धिक विकास को सुनिश्चित करने हेतु किसी निर्णय के लिए आधार अभिप्रेत है।

इस बाल मित्रवत् शब्द का विस्तार केवल वातावरण या दृष्टिकोण तक सीमित नहीं किया गया है, वरन् इसमें प्रत्येक संभव मानवीय संव्यवहार के तरीके सम्मिलित हैं।

इस 'बाल मित्रवत्' शब्द की व्यावहारिक पहलुओं पर समीक्षा की जाए तो इसके प्रत्येक पक्ष को निम्नानुसार अर्थान्वयन किया जा सकता है।

## 1. बाल मित्रवत् वातावरण — (Child friendly environment)

वातावरण किसी भी संस्था व उसकी कार्य पद्धति का प्रथम परिचायक होता है। यही संस्था की कार्यप्रणाली का प्रथम प्रभाव है। जैसा कहा गया है कि *"first impression is last impression"* अतः औपचारिक वातावरण के स्थान पर अनौपचारिक वातावरण बालक को संस्था के साथ जोड़ने के लिए अधिक प्रभावपूर्ण होता है। अधिनियम में इस संदर्भ में कई प्रावधान हैं जो इस प्रकार हैं —

1. बोर्ड में की गई बैठक व्यवस्था, वहाँ का पर्यावरण, आस-पास की बिल्डिंग की भी इस पुनर्वास के प्रयास में महत्वपूर्ण भागीदारी है। बोर्ड बैठक किसी संप्रेक्षण गृह में अथवा संप्रेक्षण गृह के निकट स्थित स्थान पर अथवा विधि का उल्लंघन करने वाले बालकों के लिए अधिनियम के

अधीन चलाई जा रही किसी संस्था के उपयुक्त परिसर में आयोजित किया जाना। {किशोर न्याय (बालकों की देखरेख और संरक्षण) आदर्श नियम, 2016, नियम 6(1) (जिसे एतस्मिन् पश्चात् 'नियम' से संबोधित किया गया है।)} किसी भी परिस्थिति में बोर्ड बैठक किसी न्यायालय या कारागार परिसर में आयोजित न किया जाना। {नियम 6(2)} बोर्ड बैठक बालकों के अनुकूल परिसरों में आयोजित किया जाना तथा वे किसी भी स्थिति में न्यायालय जैसे न दिखें। {नियम 6(4)} इस संदर्भ में बोर्ड परिसर व कक्षों में विभिन्न प्रभावपूर्ण/संदेशात्मक चित्रों, स्लोगन और विचारकों व विपरीत परिस्थितियों में संघर्ष करते हुए जीवन को नई परिभाषा देने वाले प्रेरणास्त्रोतों की संक्षिप्त जीवनी का समावेश किया जा सकता है।

2. बोर्ड की कार्यवाहियों को सरल रूप में संचालित किया जाना। {नियम 25(3)} मामले की सुनवाई के दौरान ऐसा कोई व्यक्ति उपस्थित न रहे, जिसका मामले से कोई संबंध न हो। {नियम 6(3)} मामले की सुनवाई के दौरान मात्र उन व्यक्तियों की उपस्थिति अनुज्ञात किया जाना जिनकी उपस्थिति में बालक सहज महसूस करें।
3. बोर्ड के सदस्यों के आसन ऊंचे मंच पर नहीं होंगे। {नियम 6(5)} बोर्ड तथा बालक के मध्य साक्षियों के कटघरे या अवरोध जैसी बाधाएं नहीं होगी। बैठने की व्यवस्था इस प्रकार होगी कि बोर्ड बालक से आमने-सामने बात कर सकें।

इस प्रकार मित्रवत् वातावरण प्रदान किया जाना पुनर्वास के इस दुर्गम उद्देश्य की प्राप्ति की ओर प्रथम पायदान है जो एक उंची मंजिल पर पहुंचने के लिए सही दिशा को निर्धारित करता है।

## **2. बालक मित्रवत् व्यवहार व आचरण (Child friendly behavior & conduct) तथा बाल मित्रवत् दृष्टिकोण (Child friendly attitude)**

बालक शब्द स्वयं कोमलता का पर्याय है। इस कोमलता को उसी कोमलपन से व्यवहार की भी आवश्यकता होती है। यह वे नन्हें फूल हैं जो कठोर स्पर्श मात्र से सहम जाते हैं। यदि हमारी भाषा या व्यवहार में कहीं भी कोई ममत्व या सहृदयता नहीं है, तो बालक का हमसे जुड़ पाना संभव ही नहीं है। इसलिए इस जुड़ाव को सफल बनाने के लिए आवश्यक प्रावधान अधिनियम व नियम में भी रेखांकित किए गए हैं।

बालक से बात करते समय बालकों के अनुकूल तकनीकों का प्रयोग किया जाना आवश्यक है। बालक को संबोधित करते हुए शारीरिक हाव-भाव, चेहरे के भावों, नजरों, बोल-चाल के लहजे और आवाज को बालकों के अनुकूल रखा जाना महत्वपूर्ण है। यदि इसे वास्तविक धरातल पर देखा जाए तो हम सभी सहमत होंगे की सही प्रश्न भी गलत हाव-भाव या बोल-चाल के प्रतिकूल लहजे में अपमानजनक हो जाते हैं।

इसलिए मृदु शब्दों को लय, हाव-भाव और प्रभाव के समायोजन से ही प्रभावपूर्ण परिणाम की अपेक्षा की जा सकती है। बालक से सीधे घटना के संबंध में परिचर्चा से पूर्व उसकी रुचि पर चर्चा, उसके अन्य रुचि के तथ्यों के संबंध में विचार-विमर्श बालक को एक सहज वातावरण प्रदान करने के लिए बहुमूल्य है। गैर कलंककारी शब्दों का प्रयोग किया जाना भी आवश्यक है।



### 3. बाल मित्रवत् प्रक्रिया— (Child Friendly Procedure)

यद्यपि अधिनियम 2015 व नियम के द्वारा उनके अंतर्गत की जाने वाली जांच की प्रक्रिया स्थापित है, परंतु उस प्रक्रिया को भी सरलता प्रदान किए जाने की आवश्यकता है। बालक को साधारण शब्दों में प्रक्रिया को समझाया जाना और प्रत्येक स्तर पर उसकी भागीदारी सुनिश्चित की जानी है।

जांच के दौरान परीक्षा के लिए गवाहों को प्रस्तुत करने के समय, बोर्ड यह सुनिश्चित करेगा कि जांच कार्य पूर्णतः प्रतिकूल कार्यवाही के रूप में न किया जाए तथा बोर्ड, भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 165 द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग किया जाए, ताकि न केवल घटना वरन् बालक की स्थिति, उसके परिवेश व तत्कालीन परिस्थितियों से संबंधित परिप्रश्न किए जा सकें और उसके पक्ष में उपधारणाओं [अधिनियम की धारा 3 में विनिर्दिष्ट] के आधार पर कार्यवाही की जा सके। [नियम 10 (7)] बालक की परीक्षा करने व उसका कथन अभिलिखित करने के समय बालक से बाल अनुकूल रीति से सवाल-जवाब किया जाना आवश्यक है, जिससे बालक सहज हो सके और न केवल जिन अपराधों का आरोप उस पर लगाया गया है, बल्कि घर, सामाजिक परिवेश, तत्समय के प्रभाव, उसके साथ हुए अपराधों एवं उसकी विषम परिस्थितियों का वर्णन बिना भय के कर सके। [नियम 6(3)]

बालक देखभाल संस्थान में दैनिक या नियमित रूप से बालकों से संवाद करने के लिए जाना। बोर्ड में संपादित दैनिक कार्यक्रम में भी कुछ समय निकालकर किसी भी एक स्तर पर बालकों से अनौपचारिक वार्तालाप करना और उनके कार्य की सराहना करना। यह कार्य प्रत्यायुक्त (*delegate*) भी किया जा सकता है परन्तु नियमित अंतराल पर बालकों से स्वयं वार्तालाप का एक भिन्न सकारात्मक प्रभाव है। इस सामान्य से कार्य के परिणाम को भी रूजबेह एन. भरुच ने अपनी पुस्तक *My God is Juvenile Delinquent* के पृष्ठ क्रमांक 91 पर निम्नानुसार वर्णित किया है—

*“Also, with the boys seeing us everyday at the observation Home, their level of trust would increase and they would be more forthcoming.”*

### 4. बाल मित्रवत् उपचार — (Child Frindly treatment)

पुनर्वास के आयाम व्यक्ति तथा आयु के अनुकूल होने चाहिए परन्तु इन विभिन्न वर्गों के बालकों के लिए कुछ सामान्य प्रयास किए जा सकते हैं। इस विशिष्ट व्यवहार की आवश्यकता को रूजबेह एन. भरुच ने अपनी पुस्तक *My God is Juvenile Delinquent* में सटीकता से वर्णित किया है—

*“They are young boys, need an outlet for their energy and if they don't have a full day of creativity then frustration, anger and violence are going to be the order of the day.”*

इस हेतु जांच के दौरान उपस्थित होने वाले बालकों के लिए कई कार्यक्रम आयोजित किए जा सकते हैं, जैसे —

- चित्रकला प्रतियोगिता।
- मूर्तिकला प्रतियोगिता।

- वाद-विवाद प्रतियोगिता।
- कहानी प्रस्तुति प्रतियोगिता।
- गायन प्रतियोगिता।
- पौधा रोपण कार्यक्रम।
- करियर कॉउंसलिंग व्याख्यान।
- वानिकी संबंधी व्याख्यान।
- विशेष उद्यमिता संबंधी व्याख्यान।
- गैर-सरकारी संस्थाओं के माध्यम से बालकों को ऐतिहासिक महत्व के स्थानों पर भ्रमण और उसके उपरांत उसका वृत्तांत प्रस्तुतिकरण।
- विभिन्न विषयों पर अभिव्यक्ति।
- प्रशिक्षण कार्यक्रम, जैसे सिलाई, कढ़ाई, बिजली का काम, ब्यूटिशियन कोर्स, मोटर बनवाई, बागवानी, कम्प्यूटर टाइपिंग इत्यादि।

बच्चों की इन कार्यक्रमों में भागीदारी सुनिश्चित किए जाने व उन्हें प्रोत्साहित करने के लिए यथोचित पुरस्कार तथा प्रमाण पत्र दिया जाना भी अभिप्रायित है। इस संदर्भ में नियम, 2016 के नियम 69 उपनियम 'त' के प्रावधान अवलोकनीय हैं। यद्यपि बोर्ड में संचालित की जाने वाली इस प्रक्रिया का वर्णन इस प्रावधान में नहीं है, परंतु पुनर्वास के इस कार्य का यदि इस विधि के साथ अर्थान्वयन किया जाए, तो बालक के इस सराहनीय कार्य की विशिष्ट औपचारिक पहचान उस बाल मन को प्रेरित करने के लिए अपरिहार्य है।

यह बहुत छोटे प्रयास हैं, परन्तु इनके परिणाम दूरगामी हैं। इनमें कोई भी प्रयास कल्पना का नहीं वरन् यथार्थ का भाग है, इनके आयामों को प्रदेश के कुछ किशोर न्याय बोर्ड में अपनाया भी गया है। अतः इन पद चिन्हों का अनुसरण और इसे नई परिभाषा प्रदान किया जाना समीचीन है।

गैर-सरकारी संस्थाओं के माध्यम से विभिन्न कार्ड, राखी, खिलौने बनाना व उन्हें गैर-सरकारी संस्थाओं की सहायता से ही खुले बाजार में विक्रय के लिए प्रस्तुत किया जाना भी अच्छा कदम हो सकता है।

इन कार्यक्रमों के माध्यम से बालकों को व्यस्त रखा जाता है। इसे **Behaviour modification techniques** कहते हैं। जिससे तात्पर्य बालकों को व्यस्त रखकर उनके दृष्टिकोण को बदलने का प्रयास किया जाता है, यह **Psychological treatment** है। यह उन्हें स्वयं को अभिव्यक्त करने तथा आत्मविश्वास रखने और अपनी क्षमताओं से परिचय के लिए माध्यम प्रदान करता है।

इसे ही **Millieu based intervention** भी कहते हैं जिसके अनुसार—

“A process of recovery, which starts through providing an enabling culture and environment in an institution so as to ensure that each child's abilities are discovered and they have choices and right to take decisions regarding their

life and thus, develop and identify beyond their negative experiences, such intervention which has a critical emotional impact on the child.”

इन कार्यक्रमों का आयोजन कठिन कार्य नहीं है। जिला बाल संरक्षण ईकाई में इन्हीं उद्देश्यों की प्रतिपूर्ति के लिए विभिन्न प्रकार के विभागों को एकीकृत किया गया है। उनमें म.प्र. शासन, महिला एवम् बाल विकास मंत्रालय, भोपाल के आदेश क्रमांक 1349/1595/2016/50.2 भोपाल दिनांक 6 जून, 2016 के अनुसार निम्नलिखित सदस्य होते हैं :-

- जनपद पंचायत अध्यक्ष
- कलेक्टर
- पुलिस अधीक्षक
- प्रधान मजिस्ट्रेट, किशोर न्याय बोर्ड

इन सदस्यों अर्थात् अधिनियम के क्रियान्वयन के लिए उत्तरदायी अधिकारियों, जिला चिकित्सा अधिकारी, दो स्वयंसेवी/सिविल संस्थाओं के प्रतिनिधियों के माध्यम से यह आयोजन किसी विशेष प्रयास के अन्यथा भी किया जा सकता है।

## 5. बाल मित्रवत् प्रथा – (Child friendly practice)

बालकों के हित को और उनके अधिकारों को प्रत्येक स्तर पर सुनिश्चित किए जाने की प्रतिबद्धता को बालक मन तक पहुंचाए जाने के लिए अधिनियम व नियम बाल मित्रवत् प्रथाओं का उपबंध करते हैं, जैसे :-

- जांच के दौरान उपस्थित होने वाले बालकों के लिए भोजन की व्यवस्था,
- बालकों के पीने के स्वच्छ पानी की व्यवस्था।
- उनके उचित बैठने का स्थान, जहाँ बालकों की रुचि की कुछ लघुकथाएं व प्रेरणात्मक/कविताओं का संकलन सम्मिलित किया जा सकता है।
- जांच के दौरान उपस्थित होने वाले बालकों व उनके अभिभावकों के आवागमन के व्यय की व्यवस्था। (नियम 46)
- जहां अपेक्षित हो वहां विद्यालय में बालक को पुनः दाखिला कराने या शिक्षा जारी रखने के लिए समुचित आदेश पारित करना। {नियम 7 (i)(iii)}
- बोर्ड परिसर में किसी प्रमुख स्थान पर सुझाव पेटिका या शिकायत निपटान पेटिका रखना {नियम 7(i)(vi)}
- बालक के माता-पिता से सम्पर्क करने, बालक के विषय में संगत सामाजिक और पुनर्वास संबंधी जानकारी एकत्र करने के लिए छात्र स्वयंसेवियों या गैर सरकारी संगठनों के स्वयंसेवियों की सेवाएं लेना {नियम 7 (i)(x)}

## II. जांच के उपरान्त पुनर्वास –

### अंतिम निराकरणीय आदेश (Final Dispositional Order) –

बालक द्वारा किन परिस्थितियों के अपराध कारित किया गया, उन्हें ध्यान में रखते हुए बालक के नितान्त पुनर्वास का आदेश प्रदान करना ही इस अधिनियम का लक्ष्य है। इन आदेशों का उद्देश्य बालक द्वारा किए गए विधि के उल्लंघन के लिए उसे दण्डित किया जाना नहीं वरन्, जिन कारकों से वह राज्य के कल्याणकारी संरक्षण से बाहर हो गया था, उन्हें परिवर्तित करते हुए बालक को राष्ट्र के एक उत्तरदायी नागरिक के रूप में राष्ट्रीय पुनर्एकीकरण का अवसर प्रदान किया जाना है। अतएव सीधे शब्दों में अंतिम निराकरणीय आदेश बालक के पुनर्वास का ही माध्यम है। इसी प्रयोजन से अधिनियम की धारा 18 में यह अनुध्यात किया गया है कि अंतिम आदेश पारित करते समय न केवल बालक द्वारा कारित अपराध की प्रकृति बल्कि पर्यवेक्षण अथवा हस्तक्षेप की विनिर्दिष्ट आवश्यकता, परिस्थितियां जो सामाजिक अन्वेषण रिपोर्ट में बतायी गयी हैं और बालक के अतीत के आचरण पर भी विचार किया जाना आवश्यक है।

इन्हीं आधारों पर बालक के पुनर्वास हेतु अधिनियम 2015 की धारा 18 में विनिर्दिष्ट आदेशों में से बालक विशेष के लिए उपयुक्त आदेश का चयन बोर्ड के द्वारा किया जाना अपेक्षित है। यहाँ यह भी स्पष्ट किया जाना आवश्यक है कि किसी एक मामले में धारा 18 में विनिर्दिष्ट एक ही प्रकार का आदेश पारित किए जाने की अपेक्षा नहीं है, वरन् आवश्यक मामलों में एक से अधिक प्रकृति के तथा प्रस्तुत प्रतिवेदन के आधार पर एक के बाद दूसरे प्रकृति के अंतिम आदेश पारित किए जा सकते हैं। धारा 18 में प्रावधानित आदेशों को निम्नानुसार वर्गीकृत किया जा सकता है—

1. संस्थागत पुनर्वास आदेश।
2. समुदाय आधारित पुनर्वास आदेश।

### संस्थागत पुनर्वास आदेश

बालक द्वारा किए गये अपराध की प्रकृति उसे संस्थागत पुनर्वास हेतु विशेष गृह भेजे जाने के लिए एकमात्र मापदण्ड नहीं है। इस स्तर पर पुनः धारा 3 के अंतर्गत विहित सामान्य सिद्धांतों को विशेष रूप से ध्यान में रखा जाना आवश्यक है। अंतिम आश्रय के उपाय के रूप में ही संस्थानीकरण का चयन किया जाना अपेक्षित है। अतः यह आदेश मात्र उन मामलों में पारित किया जाना चाहिए जबकि अन्य किसी प्रकृति के आदेश के द्वारा बालक का पुनर्वास किया जाना संभव या परिणामकारक नहीं है। प्रभावपूर्ण संबंध व अभिव्यक्ति के लिए बालक की तुलना एक पौधे से की जा सकती है, जो सामान्य परिस्थितियों में एक जगह से विस्थापित होने के बजाए उसी स्थान पर उचित देखभाल के साथ विकसित होने पर अपेक्षाकृत कम समय में अच्छे परिणाम को प्राप्त करता है।

यह विकल्प उन परिस्थितियों में जबकि बालक की देखरेख के लिए उचित संरक्षण उपलब्ध नहीं है वही पुनर्वास का कारक हो सकता है। ऐसे मामलों में जबकि बालक उन परिस्थितियों में निवास करता है जहाँ वह बार-बार अपराध कारित करता हो या बालक को विशिष्ट सर्वेक्षण की आवश्यकता हो या कोई अन्य आवश्यक परिस्थितियां विद्यमान हो तभी इस विकल्प को चयनित किया जाना चाहिए। इस संबंध में धारा 18 (1)(छ) में यह प्रावधान है कि “तीन वर्ष से अनधिक की ऐसी

अवधि के लिए, जैसा वह उपयुक्त समझे, विशेष गृह में रुकने की अवधि के दौरान शिक्षा, कौशल, विकास, परामर्श, व्यवहार परिवर्तन थेरेपी और मनोचिकित्सीय सहायता सहित सुधारात्मक सेवाएं प्रदान करने के लिए विशेष गृह भेजे जाने के लिए निर्देशित करना"। यहां यह समझना आवश्यक है कि बालक को विशेष गृह में भेजे जाने से आदेश का उद्देश्य अधिनियम की धारा 18 के अनुसार विशेष सुविधाएं उपलब्ध करवाना है। अतः हमारे उक्त आदेश के अनुसार बालक को सुविधाएं उपलब्ध हो, इसे सुनिश्चित किए जाने का उत्तरदायित्व भी किशोर न्याय बोर्ड या बालक न्यायालय का है।

### समुदाय आधारित पुनर्वास आदेश –

बालक को उसके परिवार अर्थात् समुदाय में ही रखते हुए उसके पुनर्वास के विकल्पों के संबंध में अधिनियम की धारा 18 (1)(क) से (च) तक में उपबंध है।

इन विकल्पों के चुनाव के संबंध में कुछ उद्धरण पर परिचर्चा महत्वपूर्ण हो सकती है, जैसे दो किशोर अवस्था के बालकों ने मात्र movie देखने के लिए पैसों की व्यवस्था करने के उद्देश्य से बिना कुछ सोचे सुनसान रोड से गुजर रही एक वृद्ध महिला का पर्स छीन लिया और भाग गए, वे पर्स छीनकर जा चुके थे, परंतु धक्का लगने से वह महिला गिर गई और उसके पैर में अस्थिभंग हो गया। वे बालक अपने कृत्य का परिणाम न समझ पाने के कारण movie देखते हुए घर पहुंच गए। उन्हें बोर्ड के समक्ष प्रस्तुत किया गया, जब उन्हें उस पूरी घटना की जानकारी हुई और घटना के बाद उस महिला की स्थिति तथा उस अकेली महिला को अपनी दिनचर्या में आने वाली उन विकट परिस्थितियों से रुबरु करवाया गया, बालक अपने कृत्य के लिए आत्मग्लानि का अनुभव कर रहे थे। साक्ष्य के दौरान उस वृद्ध महिला से बालकों के मनः स्थिति से संबंधित इन तथ्यों पर भी प्रश्न किए गए। जांच पूर्ण कर उक्त महिला की सहमति से बालकों को उस महिला की दो माह तक प्रतिदिन सेवा करने का सामाजिक सेवा सम्पन्न करने का आदेश दिया गया। दो माह उपरांत बालकों के व्यवहार में उत्तरदायित्व के बोध तथा अपने प्रत्येक कृत्य के परिणाम की समीक्षा की आवश्यकता का बोध और उनके व्यक्तित्व में महत्वपूर्ण परिवर्तन पाए गए। विधिक भाषा में बालकों के द्वारा लूट जैसा गंभीर अपराध कारित किया गया था, परंतु वस्तुतः वह एक चंचल व अपरिपक्व किशोर निर्णय क्षमता का परिणाम मात्र था।

एक अन्य मामले में एक बालक जिसके माता-पिता का देहांत अल्प आयु में हो गया था, जिसके निर्धन दादा-दादी सुबह से मजदूरी के लिए चले जाते थे, गांव के लोग उसे मनहूस होने का ताना देते हुए उससे उचित रूप से व्यवहार नहीं करते थे, उस भावुक बालक को गांव की एक लड़की से लगाव हो गया, जब गांव के लोगों व दादा-दादी ने उस लड़की से बात करने से रोका तो हिन्दी फिल्मों से प्रभावित होकर उन्होंने आत्महत्या की योजना बनाई। इस बालक ने पहले लड़की का गला काटा और फिर स्वयं भी बालक ने आत्महत्या का प्रयास किया। इस तरह से उसने अपना गला काटा कि उसके गले की सारी धमनियां (viens) कट गई और vocal box भी क्षतिग्रस्त हो गया। किसी प्रकार से उसे बचाया गया। निर्धन दादा-दादी ने उसका उपचार करवाया। फिर बालक को किशोर न्याय बोर्ड के समक्ष प्रस्तुत किया गया। दादा-दादी ने बालक को लेने से इंकार कर दिया। बालक के बुआ व फूफा थे, परंतु वह उनके साथ रहने को तैयार नहीं था। जांच में बच्चे के अकेलेपन के कारण उसका भावुरूप से कमजोर (emotionally weak) होना पाया गया। अन्य आदेश के साथ ही इस बालक को व्यक्तिगत परामर्श (individual counselling) का आदेश दिया गया था। कलेक्टर के माध्यम

से अनुसूचित जाति छात्रावास में निवासरत छात्र के रूप में दाखिला करवाया गया। संस्था के अपनी उम्र के नए बच्चों के साथ जुड़कर बालक की वह एकांतता समाप्त हो गई और वह मेधावी छात्र के रूप में अग्रसर है। इस बालक ने भी हत्या जैसा गंभीर अपराध कारित किया, परंतु सही मायनों में उसका कृत्य उचित परामर्श न मिल पाने का परिणाम था।

इन दोनों ही परिस्थितियों में विधि का उल्लंघन करने वाले बालक, अपरिपक्वता एवं पारिवारिक एवं सामाजिक विषमताओं के कारण आपराधिक गतिविधि में संलिप्त हुए थे।

### **आवासीय पुनर्वास –**

संयुक्त राष्ट्र के किशोर न्याय संबंधी न्यूनतम मानक नियमों (United Nations Standard Minimum Rules for Administration of Juvenile Justice) (सामान्यतया बीजिंग नियमों के नाम से प्रसिद्ध तथा अधिनियम 2015 की धारा 3 (xii) के अनुसार बालक को अंतिम विकल्प के कदम के रूप में संस्थानात्मक देखभाल में रखा जाना चाहिए। इस प्रतिबद्धता की पूर्ति तथा बालक को पुनर्वास की सभी आवश्यक सुविधाओं को सुनिश्चित किए जाने के आशय से अधिनियम 2015 तथा इससे पूर्व 1986 व 2000 के अधिनियमों में आवासीय देखभाल को दो व्यापक श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम श्रेणी में सभी गृहों को शामिल किया जा सकता है, अर्थात् विशेष गृह, सुरक्षित स्थान, संप्रेक्षण गृह इत्यादि। दूसरी श्रेणी समुदाय आधारित आवासीय देखभाल सुविधा है, जिसमें 'उपयुक्त व्यक्ति', 'उपयुक्त सुविधा' व 'खुला आश्रय' है।

### **संस्थागत देखभाल (Institutional Care) –**

संस्थागत देखभाल का मुख्य उद्देश्य बालक को स्थायी रूप से समाज में एक उत्तरदायी तथा उत्पादक इकाई के रूप में विकसित किया जाना है। अतः यह एक सीमित समय के लिए बालक के व्यक्तिगत देखरेख योजना पर आधारित पुनर्स्थापन के विशेष आयामों पर आधारित विकास योजना पर ही निर्भर हो सकता है। अतएव बालक के इस विकास की अंतिम महत्वपूर्ण इकाई का उसी प्रतिबद्धता के साथ कार्य किया जाना अपेक्षित है। अधिनियम 2015 की धारा 53(1) इन संस्थाओं में प्रदान की जाने वाली सेवाओं को सूचीबद्ध करता है, जो निम्नानुसार है:-

सेवाएं, जो बालक के पुनर्वास और पुनर्एकीकरण की प्रक्रिया में इस अधिनियम के अधीन पंजीकृत संस्थानों के द्वारा प्रदान की जाएंगी, ऐसी रीति से, जैसा कि विहित की जाय, होंगी-

- (i) मूल आवश्यकताएं, जैसे विहित मानकों के अनुसार भोजन, आश्रय, कपड़ा और चिकित्सीय देखभाल;
- (ii) उपकरण, जैसे घूमने वाली कुर्सियां, साधक युक्तियां, सुनने के लिए सहायक उपकरण, ब्रेले किट्स अथवा कोई अन्य उपयुक्त सहायता तथा उपकरण, जैसे विशेष देखभाल के लिए बालकों के लिए आवश्यक हों;
- (iii) उपयुक्त शिक्षा, जिसमें विशेष आवश्यकता के साथ बालकों के लिए अनुपूरक शिक्षा, विशेष शिक्षा और उपयुक्त शिक्षा शामिल है।
- (iv) कौशल विकास;
- (v) व्यवसायिक थेरेपी और जीवन कौशल शिक्षा;

- (vi) मानसिक स्वास्थ्य हस्तक्षेप, जिसमें बच्चे की आवश्यकता के लिए विनिर्दिष्ट परामर्श शामिल है;
- (vii) मनोरंजन क्रियाकलाप, जिसमें खेलकूद तथा सांस्कृतिक क्रियाकलाप शामिल है;
- (viii) विधिक सहायता जहां आवश्यक हो;
- (ix) शिक्षा, व्यावसायिक प्रशिक्षण, मद्य विरोधी, रोगों के उपपचार, जहां आवश्यक हों, के लिए निर्दिष्ट सेवा;
- (x) मामले प्रबन्ध, जिसमें वैयक्तिक देखभाल योजना की तैयारी तथा पश्चातवर्ती कार्यवाही शामिल है;
- (xi) जन्म का पंजीकरण;
- (xii) पहचान का प्रमाण, जहां आवश्यक हो प्राप्त करने के लिए सहायता; और
- (xiii) कोई अन्य सेवा, जो या तो राज्य सरकार सीधे पंजीकृत अथवा उपयुक्त व्यक्तियों या संस्थानों के द्वारा या निर्दिष्ट सेवाओं के माध्यम से बालक की भलाई सुनिश्चित करने के लिए युक्तियुक्त रूप से प्रदान की जा सकती है।

इस प्रावधान से यह स्पष्ट है कि संस्था द्वारा न केवल बालक के सामान्य वरन् विशिष्ट विकास की सेवाएं जैसे भोजन, वस्त्र, चिकित्सा के साथ कौशल विकास, कानूनी सलाह, विशेष योजनाओं, विभिन्न लाभों को प्राप्त करने के लिए आवश्यक प्रमाण पत्र तथा बालक की पश्चातवर्ती आवश्यकताओं को भी संबोधित (address) करने की अपेक्षा की गई है। इन संस्थाओं के निरीक्षण तथा बालक विशेष की व्यक्तिगत देखदेख योजना के विश्लेषण के माध्यम से बालक के पुनर्वास को सुनिश्चित किए जाने की किशोर न्याय बोर्ड से की गई अपेक्षा तथा उसकी जिम्मेदारियों की समीक्षा और स्तर भी इन प्रावधानों के माध्यम से स्पष्ट किया गया है।

यहां यह भी उल्लेखनीय है कि धारा 53(1) में उल्लेखित सूची पूर्ण नहीं है। धारा 53(2), 27 व 39 एवं नियमों में इस अपेक्षा की परिधि को और विस्तारित करते हुए प्रत्येक बालक की प्रगति की मॉनीटरिंग के लिए प्रबन्ध समिति की स्थापना के आज्ञापक प्रावधान है। नियम 38(1) इस उत्तरदायित्व की सीमाओं को विस्तारित करते हुए मनोरंजन सुविधाएं व अन्य कार्यक्रमों को नियमित रूप से उपबन्ध बालक देखभाल संस्थान में आयोजित करने का उपबन्ध करता है। इन कार्यक्रमों के संबंध में किशोर न्याय बोर्ड या बालक न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किए जाने का प्रावधान नियम 38 (8) में है। अतः इन कार्यक्रमों की समीक्षा व उनकी नियमितता को सुनिश्चित किए जाने का एक उत्तरदायित्व यहां भी किशोर न्याय बोर्ड या बालक न्यायालय का है और यदि ऐसी रिपोर्ट प्रस्तुत न की जाती हो तो, उसे प्रस्तुत करवाया जाना भी अपेक्षित है। इस प्रकार किशोर न्याय तंत्र में उचित समीक्षा भी उसके क्रियान्वयन का आवश्यक भाग है।

### **उपयुक्त सुविधा (Fit facility) –**

अधिनियम 2015 की धारा 2(27) के अनुसार उचित सुविधा से तात्पर्य यह है कि :—

- (27) “उपयुक्त सुविधा” से सरकारी संगठन अथवा स्वैच्छिक अथवा गैर-सरकारी संगठन द्वारा चलायी जाने वाली सुविधा अभिप्रेत है, जो

विनिर्दिष्ट प्रयोजन के लिए किसी बालक का स्वयं अस्थाई रूप से उत्तरदायित्व स्वीकार करने के लिए तैयार की गयी है और ऐसी सुविधा को धारा 51 की उपधारा (1) के अधीन समिति अथवा, जैसी भी स्थिति हो, बोर्ड के द्वारा उक्त प्रयोजन के उपयुक्त रूप में प्रदान की गयी हो;

विकास के पहलुओं पर सामान्य नियंत्रण के लिए आवासीय देखभाल अर्थात् गृह एक अच्छा विकल्प है परन्तु ऐसे मामले जहां विशिष्ट देखभाल जैसे संक्रमित बालक की देखरेख, नशीली दवाओं की आदत की समस्याओं से जूझ रहे बालक का संबंध है, बोर्ड के पास ही उपलब्ध शक्तियों के प्रयोग में उपयुक्त सुविधा का उपयोग अधिक कारगर हो सकता है।

यह प्रावधान किशोर न्याय अधिनियम, 1986 व 2000 में भी थे, परन्तु आज लगभग 33 वर्ष व्यतीत हो जाने के उपरान्त भी हम इन शब्दों को समझने और वास्तविक धरातल पर इन्हें क्रियान्वित करने में विफल रहे हैं। जिले में उपलब्ध शासकीय व अशासकीय आवासीय विद्यालयों या छात्रावास या अस्पतालों को समन्वय स्थापित करते हुए उन्हें उचित जांच के उपरान्त उपयुक्त सुविधा के रूप में मान्यता प्रदान की जा सकती है। इसके लिए किशोर न्याय आदर्श नियम, 2016 की अनुसूची का प्ररूप क्रमांक 38 व 39 अवलोकनीय है।

#### **उपयुक्त व्यक्ति (Fit person) –**

अधिनियम की धारा 2(28) में इसे निम्नानुसार परिभाषित किया गया है :-

(28) “उपयुक्त व्यक्ति” से कोई ऐसा व्यक्ति अभिप्रेत है, जो विनिर्दिष्ट प्रयोजन के लिए बालक का उत्तरदायित्व स्वयं लेने के लिए तैयार है और ऐसे व्यक्ति को इस निमित्त की गई जांच के पश्चात् पहचाना गया हो और बालक की देखभाल लेने के लिए तथा उसे प्राप्त करने के लिए समिति अथवा, जैसी भी स्थिति हो, बोर्ड द्वारा उक्त प्रयोजन के उपयुक्त रूप में प्रदान की गयी हो;

उपरोक्तानुसार ही जिले में कार्यरत स्वयं सेवी व्यक्तियों, गैर सहकारी संस्थाओं और समाज सेवकों से समन्वय करते हुए उन्हें उपयुक्त व्यक्ति के रूप में मान्यता प्रदान की जा सकती है। इस प्रकार बोर्ड के द्वारा संस्थागत पुनर्वास के आदेश किए जाने से पूर्व से इन विशिष्ट उपायों को भी ध्यान में रखा जा सकता है।

#### **खुला आश्रय (open shelter) –**

अधिनियम की धारा 2(41) में इस शब्द को परिभाषित किया गया है। जो इस प्रकार है—

(41) “खुला आश्रय” से बालकों की सुविधा अभिप्रेत है, जो राज्य सरकार द्वारा या तो स्वयं द्वारा या धारा 43 की उपधारा (1) के अधीन स्वैच्छिक अथवा गैर-सरकारी संगठन के माध्यम से स्थापित तथा अनुरक्षित किया गया हो और उस धारा में विनिर्दिष्ट प्रयोजनों के लिए इसके कारण पंजीकृत किया गया हो;



मध्य प्रदेश में अभी तक ऐसा कोई भी खुला आश्रय स्थापित नहीं किया गया है परन्तु संस्थागत पुनर्वास की इस संकल्पना को बालकोन्मुखी स्वरूप प्रदान किए जाने का यह एक अद्भुत प्रावधान है जो विधायिका की सोच व उनके उद्देश्यों के उचित अर्थान्वयन के लिए हमें एक व्यापक दृष्टिकोण प्रदान करती है।

### **पश्चातवर्ती देखभाल (Aftercare) –**

बालक के पुनर्वास का बोर्ड या बालक न्यायालय का कर्तव्य अंतिम आदेश पर भी समाप्त नहीं होता है। यह उत्तरदायित्व बालक के मुख्य धारा में पुनर्संमेलन तक विस्तारित है। संस्थागत देखरेख छोड़कर जाने वाले बालक की पश्चातवर्ती देखरेख का प्रावधान नियम 25 में है।

संस्थागत पुनर्वास में रहने वाले किशोर की निर्मुक्ति के 2 माह पूर्व परीवीक्षा अधिकारी या बाल कल्याण अधिकारी द्वारा बोर्ड के समक्ष निर्मुक्ति पश्चात् योजना तैयार कर प्रस्तुत किया जाना आवश्यक है। इस योजना में अन्य विकल्पों के साथ ही आवश्यकतानुसार ऐसे बालक के लिए पश्चातवर्ती देखरेख की सिफारिश की जाएगी।

पश्चातवर्ती देखरेख प्रदान करने के लिए इच्छुक संगठनों, संस्थाओं और व्यक्तियों की सूची नियम 25 (5) जिला बाल संरक्षण ईकाई द्वारा तैयार की जानी है। जिला बाल संरक्षण ईकाई के सदस्य प्रधान मजिस्ट्रेट स्वयं भी हैं। अतः इस ईकाई के इस कार्य के निष्पादन के लिए अग्रसर होने की जिम्मेदारी प्रधान मजिस्ट्रेट की भी है। इस ईकाई की बैठक में इस ओर ध्यानाकर्षित करते हुए एक विस्तृत योजना तैयार की जाना चाहिए।

पश्चातवर्ती देखरेख कार्यक्रम में निम्नलिखित सेवाओं को शामिल किया जा सकता है :-

1. अस्थायी आधार पर सामुदायिक सामूहिक आवास;
2. व्यवसायिक प्रशिक्षण के दौरान कृत्तिका या उच्चतर शिक्षा के लिए छात्रवृत्ति और व्यक्ति को रोजगार मिलने तक सहायता का उपबंध करना;
3. राष्ट्रीय कौशल विकास कार्यक्रम, भारतीय कौशल प्रशिक्षण संस्थान और केन्द्रीय और राज्य सरकारों के ऐसे अन्य कार्यक्रमों तथा कॉरपोरेट इत्यादि के साथ समन्वय से कौशल प्रशिक्षण और वाणिज्यिक स्थापनाओं में रोजगार दिलाने की व्यवस्था करना।
4. ऐसे व्यक्तियों की उनकी पुनर्वास योजनाओं के विषय में विचार-विमर्श करने के लिए उनके साथ नियमित रूप से संपर्क में रहने वाले परामर्शदाता की व्यवस्था करना।
5. उनकी ऊर्जा को सकारात्मक माध्यम उपलब्ध कराने और उनके जीवन में आए संकटों से पार पाने में उनकी सहायता करने के लिए सर्जनात्मक कार्यकलापों की व्यवस्था करना।
6. पश्चातवर्ती देखरेख में रखे गए और उद्यमी कार्यकलापों की स्थापना के आकांक्षी व्यक्तियों के लिए ऋणों या सहायता की व्यवस्था और
7. राज्य अथवा संस्थागत सहायता के बिना जीवनयापन के लिए उन्हें प्रोत्साहित करना।

सामुदायिक सामूहिक आवास का कार्यक्रम राज्य सरकार के द्वारा किया जाना है परन्तु सामूहिक आवास के अन्यथा की योजना जिला स्तर पर ही तैयार की जानी है और एक विस्तृत योजना तैयार

करते हुए बोर्ड या बालक न्यायालय नियम, 2016 के प्रारूप 37 के अनुसार पश्चातवर्ती देखरेख प्रदान किया जाना चाहिए। म.प्र. राज्य में किशोर न्याय निधि स्थापित की जा चुकी है। उसी निधि से यथोचित मामलों में आर्थिक सहायता प्रदान करने का आदेश भी दिया जा सकता है। यहां यह भी उल्लेखनीय है कि ऐसी निधि सीधे बालकों के बैंक खाते में अंतरित की जाएगी।

### **पुनर्वास कार्यक्रम की समीक्षा –**

बालक के पुनर्वास के लिए किसी भी विकल्प का चुनाव बालक की सामाजिक अन्वेषण रिपोर्ट (प्रारूप 6) तथा व्यक्तिगत देखरेख योजना (प्रारूप 7) के आधार पर किया जाता है। व्यक्तिगत देखरेख योजना के प्रारूप में ही खण्ड 'ख' के रूप में बालक की प्रगति की निगरानी प्रथम 3 मास के लिए प्रत्येक पखवाड़े में और तत्पश्चात् मास में एक बार की जानी चाहिए।

यहां कहीं अपेक्षित हो वहां बालक की प्रगति को समीक्षा करने के लिए प्रारूप 14 के अनुसार पुनर्वास कार्य भी जारी किया जा सकता है। (नियम 7)

बालक को परीवीक्षा को निर्मुक्त करते समय उसे परीवीक्षा अधिकारी की निगरानी में रखे जाने का आदेश भी अधिनियम 2015 की धारा 18 (1) के अनुसार दिया जा सकता है। ऐसी स्थिति में परीवीक्षा अधिकारी को बालक की प्रास्थिति के संबंध किसी भी पुनर्वास के विकल्प के चुनाव के पश्चात् उसके परिणाम की समीक्षा की जानी भी आवश्यक है। समीक्षा के उपरांत ही उक्त चुनाव के परिणाम तथा उसके निरंतरता पर विचार किया जा सकता है।

आवधिक रिपोर्ट प्रस्तुत करने का आदेश दिया जाना भी आवश्यक है। इस प्रकार बालक की निर्मुक्ति के पश्चात् प्रारूप 10 के अनुरूप भी उसकी प्रास्थिति की समीक्षा की जा सकती है।

अंतिम निराकरणीय आदेश पारित किए जाने से पूर्व प्रत्येक बालक के संबंध में प्रारूप 7 के अनुसार व्यक्तिगत देखरेख योजना तैयार किया जाना आवश्यक है। अतः व्यक्तिगत देखरेख योजना के माध्यम से संस्थागत व गैर संस्थागत सभी प्रकार के बालकों के पुनर्वास की स्थिति की समीक्षा की जा सकती है।

बालक के किसी बालक देखरेख संस्थान में दाखिल करते ही नियम 69 (1) के अनुसार बालक का जीवनकृत प्रारूप 43 के अनुरूप तैयार किया जाना आवश्यक है। यह जीवनकृत बालक से समानुद्देशित किए गए बाल कल्याण अधिकारी या मामला कार्यकर्ता (case worker) के द्वारा तैयार की जानी है। इस जीवनकृत को बालक देखरेख संस्थान में संधारित किया जाता है। इस दस्तावेज में उल्लेखित पूर्ववत् परिस्थितियों के आधार पर भी बालक की वर्तमान स्थिति की समीक्षा की जा सकती है।

संस्थागत पुनर्वास के अधीन बालकों की स्थिति में बालक देखरेख संस्थाओं में नियम के अनुसार case file संधारित किया जाना आवश्यक है। यह case file संस्था में बालक के व्यवहार इसकी प्रतिक्रिया का एक व्यापक रिकॉर्ड है। इस रिकॉर्ड के माध्यम से बालक के पुनर्वास की स्थिति का आंकलन संभव है। यहां यह भी उल्लेखनीय है कि प्रत्येक सुनवाई तिथि पर इस case file को प्रस्तुत किया जाना आवश्यक है। जिन जिलों में सम्प्रेषण गृह या सुरक्षित स्थान नहीं हैं, वहां बालकों को इन गृहों से प्रत्येक सुनवाई तिथि पर प्रस्तुत कर पाना कई कारणों पर निर्भर है परंतु सूचना और प्रौद्योगिकी

के युग में e-mail या किसी अन्य माध्यम से बालक की case file को प्रत्येक सुनवाई तिथि पर प्रस्तुत करवाया जाना चाहिए। बालक के पुनर्वास के लिए उसकी व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार पर निबंधन लगाते हुए जो आदेश हमारे द्वारा दिया जाता है, उसकी समीक्षा की उत्तरदायित्व ही हमारे आदेश को परिपूर्ण बनाता है।

### **पुनर्वास योजना (Rehabilitation Programme) —**

पुनर्वास के इन विकल्पों की ओर अग्रसर होने से पूर्व जिला बाल संरक्षण ईकाई के माध्यम से बालकों के पुनर्वास के संबंध में वृहद/ विस्तृत योजना तैयार किया जाना आवश्यक है। बोर्ड में होने वाली त्रैमासिक मीटिंग तथा जिला बाल संरक्षण ईकाई की मीटिंग में अन्य मुद्दों के साथ ही इस महत्वपूर्ण बिन्दु को सम्मिलित किया जाना और इस पर भी परिचर्चा करते हुए सभी निकायों के सहयोग से पुनर्वास योजना तैयार किया जाना अपेक्षित है।

इन योजनाओं में कई विकल्प तैयार किए जा सकते हैं जैसे :-

1. बालकों के लिए व्यक्तिगत या सामूहिक परामर्श की व्यवस्था :- इसके लिए जिले में स्वयंसेवी व्यक्तियों का एक पैरोल तैयार किया जा सकता है। किसी एक निश्चित कार्य दिवस अथवा प्रत्येक दिवस एक निश्चित समय पर समन्वय स्थापित करते हुए उनकी सेवा प्राप्त की जा सकती है।
2. सामुदायिक सेवाओं की व्यवस्था :- जिले में उपलब्ध अस्पताल, वृद्धाश्रम, दिव्यांग बालकों के छात्रावास, नगर निगम के उद्यानों व यातायात विभाग के साथ सामुदायिक सेवाओं के निष्पादन हेतु एक विस्तृत कार्यक्रम तैयार करना। उक्त विभाग में इस संदर्भ में कौन सी व कैसे सेवाएं ली जाएगी, बालक का उत्तरदायित्व कौन लेगा इस संदर्भ में योजना तैयार करना।
3. जिले में संचालित शासन की अन्य योजनाओं से विधि का उल्लंघन करने वाले बालकों को कैसे लाभान्वित किया जा सकता है, इसकी रूपरेखा तैयार करना। जैसे प्रधानमंत्री कौशल विकास कार्यक्रम एवं बालिकाओं को मुख्यमंत्री कौशल विकास/ मुख्यमंत्री महिला सशक्तिकरण योजना के तहत लाभान्वित किए जाने की कार्यवाही की जाए।
4. गैर-सरकारी संस्थाओं के माध्यम से किशोर न्याय बोर्ड में आयोजित किए जा सकने वाले कार्यक्रमों की सूची और वार्षिक कैलेंडर तैयार करना।
5. वन विभाग, उद्यानिकी विभाग व अन्य के साथ मिलकर बालकों को पर्यावरण उन्मुखी बनाने के संबंध में कार्यशाला की व्यवस्था स्थापित करना।
6. बालक देखरेख संस्था में बालकों द्वारा अपनाई जा रही दिनचर्या के संबंध में तैयार daily routine की समय-समय पर समीक्षा करना।
7. स्वेच्छिक दानदाताओं की सूची तैयार कर किशोर न्याय बोर्ड तथा, बालक देखरेख संस्था में बालकों के लिए प्रेरक पुस्तकें, रंग, ड्रॉइंग शीट, इन्डोर एक्टिविटी, आउट डोर गेम, अधोसंरचना से संबंधित वस्तुओं की व्यवस्था संबंधी योजना निर्मित करना।
8. यदि जिले में कोई भी व्यवसायिक कम्पनी या उद्योग हो तो, उनके अधिकारियों से संपर्क करते हुए corporate social responsibility (CSR) के माध्यम से विधि का उल्लंघन करने वाले

बालकों के पुनर्वास के लिए एक विस्तृत योजना तैयार करना। (कंपनी अधिनियम, 2013 की अनुसूची VI व VII की धारा 135 के अंतर्गत)

9. उपलब्ध दानदाताओं और कम्पनी या उद्योग के अधिकारियों का ध्यान adopt home या adopt a child योजना की ओर आकर्षित करना। यथोचित मामले में उचित Memorandum of understanding (MOU) अनुबंध के निष्पादन को सुनिश्चित करना)
10. चिकित्सा व शिक्षा की व्यवस्था तथा आवधिक कैम्प हेतु जिला शिक्षा अधिकारी तथा जिला चिकित्सा एवं स्वास्थ्य अधिकारी के साथ एक योजना तैयार करना।
11. बालकों को विधिक सहायता सुनिश्चित करने हेतु सक्रिय अधिवक्ताओं का पैनल तैयार करना।
12. स्पॉन्सरशिप एवं पश्चात्तर्ती देखरेख के संबंध में योजना तैयार करना।
13. ब्लॉक एवं समुदाय स्तरों पर बाल संरक्षण कार्यक्रम में स्थानीय युवाओं को शामिल करने के लिए उनमें स्वयंसेवी भावना के प्रोत्साहन की योजना तैयार करना।
14. पालकों के परामर्श के लिए योजना तैयार करना।
15. बालक देखरेख संस्था के बालकों के लिए outing तथा excursion टूर हेतु योजना तैयार करना।
16. संस्था में प्रदान की जा सकने वाली विभिन्न कौशल विकास कार्यक्रम तथा प्रमाण पत्र हेतु योजना तैयार करना।
17. विभिन्न त्यौहारों पर संस्था में विशेष कार्यक्रम संबंधी योजना तैयार करना।
18. जिले के प्रतिष्ठित व नामित व्यक्तियों से बालकों की परिचर्चा संबंधी कार्यक्रम/योजना तैयार करना।
19. विशेष मामलों में सामाजिक अन्वेषण रिपोर्ट तैयार कर सकने वाले Para-legal-volunteer और सामाजिक कार्यकर्ता की सूची तैयार करना।
20. बालकों के आवधिक चिकित्सीय परीक्षण हेतु एक विस्तृत योजना तैयार करना।

यह सभी योजनाएं मात्र उदाहरण हैं और ऐसी अन्य योजनाएं तैयार करना और उनका क्रियान्वयन सुनिश्चित करना।

### उपसंहार —

किशोर के पुनर्वास के अंतिम निर्णयन की जिम्मेदारी किशोर न्याय बोर्ड को प्रदान की गई है। विधायिका के द्वारा भारत के भविष्य के संरक्षण का उत्तरदायित्व भी बोर्ड को दिया गया है। अतः इसी गंभीरता और संवेदनशील दृष्टिकोण के साथ इसे निर्वाहित किए जाने का कर्तव्य निष्पादन ही हमारी क्षमता को स्थापित करना ही इस देश के सर्वांगीण विकास के लिए हमारा योगदान हो सकता है। यहां यह भी रेखांकित किया जाना आवश्यक है कि जहां बालक का विचारण किशोर न्याय बोर्ड के द्वारा बालक न्यायालय को प्रेषित किया गया हो, उन मामलों में भी बालक के पुनर्वास की यह प्रतिबद्धता समाप्त नहीं होती है।



## विधिक समस्याएँ एवं समाधान

(इस स्तम्भ के अन्तर्गत मध्यप्रदेश के अधीनस्थ न्यायालयों के न्यायाधीशों द्वारा अकादमी के संज्ञान में लाई गई विधिक समस्याओं का उपयुक्त हल प्रस्तुत करने का प्रयास किया जाता है। स्तम्भ के लिये न्यायाधीशगण अपनी विधिक समस्याएं अकादमी को भेज सकते हैं। चयनित समस्याओं के समाधान आगामी अंको में प्रकाशित किये जाएंगे।)

### 1. क्या धारा 138 परक्राम्य लिखत अधिनियम के अंतर्गत चेक अनादरण के अपराध से संबंधित परिवाद पर संस्थित प्रकरण में विचारण कार्यवाही धारा 258 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत रोक दी अथवा समाप्त की जा सकती है?

परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के अंतर्गत चेक अनादरण के अपराध से संबंधित संस्थित परिवाद मामलों में त्वरित विचारण और शीघ्र निराकरण हेतु माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा समय-समय पर दिशा-निर्देश जारी किये गये हैं। इसी सम्बंध में कतिपय दिशा-निर्देश न्यायदृष्टांत *मेसर्स मीटर्स एंड इंस्ट्रूमेंट प्रा. लि. विरुद्ध कंचन मेहता, एआईआर 2017 एससी 4594* में भी जारी किए गये थे। कभी-कभी विचारण न्यायालय के समक्ष अभियुक्त उपस्थित होकर चेक की राशि और न्यायालय द्वारा अधिरोपित जुर्माना अथवा प्रतिकर जमा करने का प्रस्ताव रखता है। यह स्थिति तब निर्मित होती है जब परिवादी अपराध का शमन करने से इंकार कर देता है इसी स्थिति को दृष्टिगत रखते हुए *मेसर्स मीटर्स* (पूर्वोक्त) में मामले को धारा 258 दण्ड प्रक्रिया संहिता के प्रावधान को अपनाकर विचारण कार्यवाही समाप्त करने का निर्देश भी दिया गया था। शीर्ष न्यायालय का मत था कि विचारण न्यायालय चेक राशि, विधिपूर्ण ब्याज तथा परिवादी द्वारा उपगत खर्च को विचार में लेते हुए एक युक्तियुक्त प्रतिकर का निर्धारण करे और अभियुक्त को दायित्वाधीन ठहराते हुए प्रकरण को धारा 258 दण्ड प्रक्रिया संहिता में उल्लेखित प्रावधान की सहायता लेकर समाप्त कर दे। यह भी कहा गया कि यदि परिवादी आपत्ति भी करे तो वह महत्वहीन होगी।

लेकिन अभी हाल ही में इसी संदर्भ में माननीय उच्चतम न्यायालय की संविधान पीठ ने स्वतः संज्ञान लेते हुए “In Re: EXPEDITIOUS TRIAL OF CASES UNDER SECTION 138 N. I. ACT 1881 (Suo Motu Writ Petition (Crl.) No. 2 of 2020 आदेश दिनांक 16.04.2021)” के मामले में प्रतिपादित किया है कि धारा 258 दण्ड प्रक्रिया संहिता मजिस्ट्रेट को सशक्त करती है कि वह कारण लेखबद्ध करते हुए परिवाद से भिन्न संस्थित समन मामलों में कार्यवाही रोक कर अभियुक्त की दोषमुक्ति का निर्णय सुना सकता है किन्तु धारा 258 दण्ड प्रक्रिया संहिता परिवाद पर संस्थित मामलों पर लागू नहीं होती है। पीठ ने यह भी मत व्यक्त किया है कि *मेसर्स मीटर्स* (पूर्वोक्त) में प्रतिपादित विधि सही नहीं थी। पीठ द्वारा *अदालत प्रसाद विरुद्ध रूपलाल, (2000) 7 एससीसी 338 तथा सुब्रमण्यम सेतु रमन विरुद्ध महाराष्ट्र, (2004) 13 एससीसी 324* को विचार में लेते हुए उपरोक्त मत दिया है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के अंतर्गत चेक अनादरण के अपराध से संबंधित परिवाद मामलों में धारा 258 दण्ड प्रक्रिया संहिता के प्रावधान के तहत विचारण कार्यवाही समाप्त नहीं की जा सकती है।



2. क्या विचारण न्यायालय ऐसे दोषसिद्ध अभियुक्त को धारा 389(3) दण्ड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत जमानत पर मुक्त कर सकता है जिसकी सजा का भुगताया जाना प्रारंभ हो चुका हो?

प्रायः इस संबंध में भ्रम की स्थिति रहती है कि विचारण न्यायालय ऐसे अभियुक्त को धारा 389 (3) दण्ड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत जमानत का लाभ नहीं दे सकता जिसकी सजा का भुगताया जाना प्रारंभ हो चुका है अर्थात् न्यायालय धारा 389 (3) के अंतर्गत अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग तब तक ही कर सकता है जब तक अभियुक्त को सजा वारंट के पालन में जेल न भेजा गया हो।

जब विचारण न्यायालय किसी अभियुक्त को दोषसिद्ध करती है तो उसके सामने धारा 389 (3) दण्ड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत दो परिस्थितियां निर्मित हो सकती हैं। पहली परिस्थिति जिसमें अभियुक्त दोषसिद्ध के निर्णय के विरुद्ध अपील प्रस्तुत करने और दण्डादेश को स्थगित कराने तक की अवधि के लिए दण्डादेश का निष्पादन रोके जाने और जमानत पर स्वतंत्र किए जाने हेतु विचारण न्यायालय में आवेदन प्रस्तुत करता है। ऐसा आवेदन विचारण न्यायालय स्वीकार करता है किंतु अभियुक्त विचारण न्यायालय के आदेश के पालन में उसी समय जमानत-बंध पत्र प्रस्तुत करने में किन्हीं कारणों से असमर्थ रहता है। परिणामतः अभियुक्त को दण्डादेश के निष्पादन में सजा भुगतने हेतु जेल भेज दिया जाता है। इसके बाद आगामी दिवस पर अभियुक्त की ओर से जमानत-बंध पत्र प्रस्तुत करके उसे स्वतंत्र किए जाने जाने की प्रार्थना की जाती है। दूसरी परिस्थिति में, अभियुक्त को दोषसिद्ध किये जाने पर उसकी ओर से विचारण न्यायालय में धारा 389 (3) के अंतर्गत कोई जमानत के लिए आवेदन प्रस्तुत नहीं किया जाता है और परिणामतः अभियुक्त को दण्डादेश के निष्पादन में सजा भुगतने हेतु जेल भेज दिया जाता है। इसके बाद आगामी दिवस पर अभियुक्त की ओर से धारा 389 (3) के अंतर्गत जमानत के लिए आवेदन पत्र प्रस्तुत कर जमानत पर स्वतंत्र किए जाने जाने की प्रार्थना की जाती है।

यह कि धारा 389 दण्ड प्रक्रिया संहिता के प्रावधान का उद्देश्य किसी दोषसिद्ध अभियुक्त को दोषसिद्धि के निर्णय के विरुद्ध अपील प्रस्तुत करने और अपील के निराकरण होने तक विचारण न्यायालय के दण्डादेश का निष्पादन रोके जाने और तब तक जमानत पर स्वतंत्र रहने के लिए समर्थ बनाना है। न्याय दृष्टांत *मयूराम सुब्रामनियन श्रीनिवासन विरुद्ध सी. बी. आई., एआईआर 2006 एससी 2449* में अवधारित किया गया है कि जहां अभियुक्त को अपील का अधिकार है वहीं धारा 389 (3) के अंतर्गत दण्डादेश का निष्पादन निलंबित कराने या जमानत पर स्वतंत्र होने का अधिकारी होगा।

धारा 389 की उपधारा (3) का संबंध विचारण न्यायालय की शक्तियों से है जो दोषसिद्ध अभियुक्त को सीमित समयावधि, जितनी अपील प्रस्तुत करने और अपील न्यायालय से विचारण न्यायालय के दण्डादेश के निष्पादन को अपील के लंबित रहते तक निलंबित रखने का आदेश प्राप्त करने के लिए आवश्यक हो, के लिए जमानत पर रिहा करने का आदेश देने को समर्थ बनाती है। दूसरे अर्थों में, दोषसिद्ध अभियुक्त तब तक विचारण न्यायालय से दण्डादेश का निष्पादन रोके जाने और जमानत पर स्वतंत्र किए जाने हेतु प्रार्थना करने का हकदार है जब तक कि वह अपील न्यायालय में कार्यवाही आरंभ नहीं कर देता। अपील न्यायालय में अपील प्रस्तुत करने विषयक कार्यवाही इसके लिए विहित परिसीमाकाल के भीतर की जाना अपेक्षित होगा। अतएव विचारण न्यायालय द्वारा किसी दोषसिद्ध अभियुक्त को उपयुक्त मामले में धारा 389 (3) दण्ड प्रक्रिया संहिता के प्रावधान के अंतर्गत उस समय तक दण्डादेश का निष्पादन रोके जाने और जमानत पर स्वतंत्र किए जाने का आदेश देना विधिपूर्ण होगा जब तक कि दोषसिद्ध अभियुक्त अपील न्यायालय में कार्यवाही आरंभ नहीं कर देता अथवा अपील के लिए विहित परिसीमाकाल का अवसान नहीं हो जाता। विचारण न्यायालय कि यह शक्ति इस बात से प्रभावित नहीं होगी कि उपर वर्णित दोनों में से किसी परिस्थिति में अभियुक्त को दण्डादेश के निष्पादन में सजा भुगतने हेतु जेल भेजा जा चुका था।



### 3. क्या मध्यस्थ (मीडिएटर) द्वारा न्यायालय को प्रेषित प्रतिवेदन निष्पादन योग्य होता है?

धारा 89 सिविल प्रक्रिया संहिता विवाद के वैकल्पिक समाधान के उपाय उपबंधित करती है। जिनमें मध्यस्थता यानि मीडिएशन के लिए प्रकरण निर्दिष्ट (रेफर) करना सम्मिलित है। मध्यस्थ यानि मीडिएटर पक्षकारों के मध्य आपसी सुलह व समझौता कराने का प्रयास करता है तथा मध्यप्रदेश मध्यस्थता नियम, 2016 में विहित प्रक्रियानुसार कार्यवाही करके उक्त नियमों के नियम 25 के अंतर्गत पक्षकारों के मध्य तय शर्तों के अनुसार समझौता-करार (settlement-agreement) तैयार कर प्रतिवेदन उस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करता है जिस न्यायालय द्वारा प्रकरण निर्दिष्ट किया गया था। नियम 26 के अंतर्गत ऐसे समझौता-करार की वैधता का परीक्षण करके न्यायालय पक्षकारों के बीच आपसी सुलह व समझौते की तय शर्तों के अनुसार डिक्री/अवार्ड पारित करता है और यह डिक्री/अवार्ड निष्पादन योग्य होता है। अतः स्पष्ट है कि मध्यस्थ (मीडिएटर) द्वारा न्यायालय को प्रेषित प्रतिवेदन स्वमेव डिक्री/अवार्ड नहीं है तथा निष्पादन योग्य नहीं होता है। इस सम्बंध में न्यायदृष्टांत **मोहर सिंह विरुद्ध गजेन्द्र सिंह, आईएलआर 2020 एम.पी. एसएन 18** अवलोकनीय है।



4. क्या (निजी परिवार से भिन्न) किसी दाण्डिक विचारण में निजी व्यक्ति अथवा पीड़ित की ओर से प्रतिनिधित्व करने वाले अधिवक्ता को सीधे किसी साक्षी का परीक्षण करने का अधिकार है?

दण्ड प्रक्रिया संहिता (संशोधन) अधिनियम, 2008 (क्र. 5 सन् 2009) द्वारा धारा 24 की उपधारा 8 में परंतुक जोड़ा गया, जो दिनांक 31.12.2009 से प्रभावी है। संशोधित प्रावधान इस प्रकार है—

“परंतु यह कि न्यायालय पीड़ित को इस उपधारा के अधीन अभियोजन की सहायता करने के लिए अपनी पसन्द के अधिवक्ता को नियुक्त करने की अनुमति प्रदान कर सकेगा।”

दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 301 की उपधारा (2) के अनुसार, जहां किसी मामले में यदि कोई प्राइवेट व्यक्ति किसी न्यायालय में किसी व्यक्ति को अभियोजित करने के लिए प्राइवेट तौर पर पैरवी हेतु अधिवक्ता नियुक्त करता है वहां उस मामले का भारसाधक लोक अभियोजक या सहायक लोक अभियोजक, अभियोजन का संचालन करेगा और प्राइवेट तौर पर नियुक्त अधिवक्ता केवल लोक अभियोजक या सहायक लोक अभियोजक के निर्देश के अधीन कार्य करेगा और मामले में साक्ष्य की समाप्ति पश्चात् न्यायालय की अनुज्ञा से ही लिखित रूप में तर्क प्रस्तुत कर सकेगा।

माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा न्यायदृष्टांत *रेखा मुरारका विरुद्ध वेस्ट बंगाल राज्य, एआईआर 2020 एससी 100* में प्रतिपादित किया गया है कि धारा 301(2) एवं 24(8) का समेकित प्रभाव यह है कि पीड़ित के अधिवक्ता को साक्षी के परीक्षण, प्रतिपरीक्षण एवं मौखिक तर्क प्रस्तुत करने का अधिकार नहीं है। यदि पीड़ित के अधिवक्ता को ऐसा प्रतीत होता है कि प्रकरण में किसी साक्षी का परीक्षण या प्रतिपरीक्षण लोक अभियोजक द्वारा उचित रूप से नहीं किया गया है, तो वह यह तथ्य न्यायालय के ज्ञान में लाएगा और यदि न्यायालय उचित समझे तो दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 311 अथवा साक्ष्य अधिनियम की धारा 165 की शक्तियों का प्रयोग कर इस सम्बंध में विनिश्चय करेगा। इस प्रकार पीड़ित के अधिवक्ता का अभियोजन संचालन में सीमित अधिकार है कि वह किसी साक्षी के परीक्षण अथवा प्रतिपरीक्षण के संबंध में सीधे प्रश्न नहीं कर सकता अपितु उसे इस संबंध में सुझाव पहले न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करने होंगे जिस पर न्यायालय विवेकानुसार कार्यवाही करेगा।





## **PART - II**

### **NOTES ON IMPORTANT JUDGMENTS**

60. **ARBITRATION AND CONCILIATION ACT, 1996 – Sections 2 (1)(e), 9, 14, 34 and 36**

**COMMERCIAL COURT ACT, 2015 – Section 11**

**Jurisdiction – Court – Commercial disputes involving an arbitration dispute – Only Commercial Court of the status of District Judge or Additional District Judge would be the competent Court to entertain matter u/s. 9, 14, 34 and 36 of the Arbitration Act and Civil Judge Class I is excluded to hear such matters.**

**माध्यस्थम एवं सुलह अधिनियम, 1996 – धाराएं 2(1)(ड), 9, 14, 34 एवं 36**

**वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम, 2015 – धारा 11**

**क्षेत्राधिकार – न्यायालय – ऐसे वाणिज्यिक विवाद जिनमें माध्यस्थम विवाद शामिल है, के संबंध में माध्यस्थम अधिनियम की धाराएं 9, 14, 34 एवं 36 से संबंधित प्रकरणों की सुनवाई के लिए मात्र जिला न्यायाधीश या अपर जिला न्यायाधीश के स्तर का ही वाणिज्यिक न्यायालय सक्षम न्यायालय होता है और कोई व्यवहार न्यायाधीश वर्ग-1 का न्यायालय ऐसे प्रकरणों की सुनवाई नहीं कर सकता है।**

**Yashwardhan Raghuwanshi v. District & Sessions Judge and anr.**

**Order dated 26.02.2021 passed by the High Court of Madhya Pradesh in Writ Petition No. 19656 of 2020, reported in 2021 LawSuit (MP) 64**

**Relevant extracts from the order:**

It would be evident from the language employed by the legislature in the definition clause of "Court" in Section 2(1)(e) of the Arbitration Act that it intended to confer power in respect of the disputes involving arbitration on the highest judicial Court of a District so as to minimize the supervisory role of the Courts in the arbitral process and, therefore, purposely excluded any Civil Court of grade inferior to such Principal Civil Court, or any Court of Small Causes. The Court of superior most jurisdiction in a District is the Court of District Judge as interpreted by the Supreme Court in the case of *State of Maharashtra, through Executive Engineer v. Atlanta Limited, (2014) 11 SCC 619*. The jurisdiction in respect of arbitration matter is provided in Section 19 of the Commercial Courts Act and Section 15 thereof contemplates transfer of all suits and applications including the application under the Arbitration Act pending in Civil Courts in any district or pending in High Court where Commercial Division is constituted or area in respect of which the Commercial Courts have been constituted. While Court or a Commercial Division to entertain or decide any suit, application or proceedings relating to any commercial dispute in respect of which the jurisdiction of the Civil

Court is either expressly or impliedly barred under any other law for the time being in force, Section 21 of the Commercial Court Act stipulates that save as otherwise provided, the provisions of this Act shall have effect, notwithstanding anything inconsistent therewith contained in any other law for the time being in force or in any instrument having effect by virtue of any law for the time being in force other than this Act. Segregation of and arbitration matters on the basis of a pecuniary limit is not what the law provides for. All the arbitration matters, irrespective of the value of claim, are required to be adjudicated by Principal Civil Court of original jurisdiction. Therefore, it is clear that in respect of commercial disputes involving and arbitration dispute only the Commercial Court of the status of District Judge or Additional District Judge would be the competent court to entertain the matters under Sections 9, 14, 34 & 36 of the Arbitration Act.



#### **61. CIVIL PRACTICE:**

**Date of hearing – Discretion of Court – Complete discretion can be used by the Presiding Officer of the Court for fixing the date of hearing/ proceedings and he is the best person to decide how to use his judicial time.**

**सिविल प्रथा:**

सुनवाई की तिथि – न्यायालय का विवेकाधिकार – सुनवाई / कार्यवाही हेतु तिथि निर्धारण के लिये न्यायालय के पीठासीन अधिकारी द्वारा संपूर्ण विवेकाधिकार का प्रयोग किया जा सकता है और वह अपने न्यायिक समय के उपयोग की प्रक्रिया निर्धारण के लिये सर्वोत्तम व्यक्ति होता है।

**Aarti Sahu (Smt.) v. Ankit Sahu**

**Order dated 04.09.2020 passed by the High Court of Madhya Pradesh in Miscellaneous Civil Case No. 62 of 2020, reported in ILR (2020) MP 2171**

#### **Relevant extracts from the order:**

Merely because short dates are given to the parties, no malice can be attributed on the Court. It is not pointed out to this Court as to how short dates have caused prejudice to the applicant. The applicant has not pointed out anything which shows that because of short date given by the court below, her right to defend herself in any way is adversely affected. This is trite that the Presiding Officer is the guardian of the judicial time and has complete discretion to fix the dates of hearing/proceeding. Unless the procedure adopted by the Court amounts to manifest propriety which caused prejudice to any party, this Court is not obliged to interfere.



**62. CIVIL PRACTICE:**

**Will – Doctrine of election and doctrine of estoppel – Remaining portion of the Will cannot be challenged by a person who has taken benefit of a particular portion of the Will because of doctrine of election – After taking benefits of any instrument/document, validity of the instrument/document cannot be challenged.**

सिविल प्रथा:

वसीयत – चुनाव का सिद्धान्त एवं विबन्ध का सिद्धान्त – एक व्यक्ति जिसने वसीयत के किसी भाग विशेष का लाभ प्राप्त कर लिया है, वह चुनाव के सिद्धान्त के कारण वसीयत के शेष भाग को चुनौती नहीं दे सकता है – किसी लिखत/दस्तावेज का लाभ लेने के पश्चात् उसकी वैधता को चुनौती नहीं दी जा सकती।

**Bhagwat Sharan (Dead thr. LRs.) v. Purushottam & ors.**

**Judgment dated 03.04.2020 passed by the Supreme Court in Civil Appeal No. 6875 of 2008, reported in ILR (2020) MP 1795 (SC)**

**Relevant extracts from the judgment:**

It is trite law that a party cannot be permitted to approbate and reprobate at the same time. This principle is based on the principle of doctrine of election. In respect of Wills, this doctrine has been held to mean that a person who takes benefit of a portion of the Will cannot challenge the remaining portion of the Will. A party cannot be permitted to “blow hot and cold”, “fast and loose” or “approbate and reprobate”. Where one party knowingly accepts the benefits of a contract or conveyance or an order, it is estopped to deny the validity or binding effect on him of such contract or conveyance or order.

Any party which takes advantage of any instrument must accept all that is mentioned in the said document.



**63. CIVIL PROCEDURE CODE, 1908 – Section 11 and Order 23 Rule 1**

***Res judicata* and waiver of rights – Principle of *res judicata* and principle of waiver of rights are totally different principles – If any plaintiff withdraws his suit without permission of court then a new suit about same subject matter cannot be filed by him.**

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 – धारा 11 एवं आदेश 23 नियम 1

पूर्व न्याय एवं अधिकारों का अधित्यजन – पूर्व न्याय का सिद्धान्त एवं अधिकारों के अधित्यजन का सिद्धान्त पूर्णतः भिन्न-भिन्न सिद्धान्त हैं – यदि कोई वादी न्यायालय की अनुमति के बिना अपना वाद प्रत्याहृत है तो वह समान विषय वस्तु के बारे में नवीन वाद प्रस्तुत नहीं कर सकेगा।

**Suresh Kesharwani & anr. v. Roop Kumar Gupta & anr.**

**Order dated 06.08.2020 passed by the High Court of Madhya Pradesh in Civil Revision No. 566 of 2019, reported in ILR (2020) MP 1955**

**Relevant extracts from the order:**

Section 11 of the Code of Civil Procedure is based on principle of *res-judicata*. As per Section 11 of CPC, no Court shall try any suit or issue in which the matter is directly and substantially in issue has been directly and substantially in issue in the former suit between the same parties, or between parties under whom they or any of them claim, litigating under the same title, in a Court competent to try such subsequent suit or the suit in which issue has been substantially raised and has been heard and finally decided by such Court. Section 11 of CPC creates bar on trial of subsequent suit by Court if issues which have been directly and substantially in issue between same parties in former C.R. No. 566 of 2019 suit has been decided on its merits. However, Order 23 of CPC is not based on principle of *res-judicata* but it is based on principle of waiver of rights by the plaintiff. As per Order 23 Rule 1 of CPC, plaintiff may at any time after institution of the suit abandon his suit or abandon a part of his claim in suit or withdraws from suit or part of a claim against all or any of the defendants. If such withdrawal is made without permission of Court envisaged in Order 23 Rule 3, then plaintiff shall be precluded from instituting any fresh suit in respect of such subject matter or such part of the claim. Order 23 of Code of Civil Procedure, 1908 is based on the principle of waiver of the rights of the plaintiff and not *res-judicata*. Order 23 of CPC and Section 11 of CPC are based on different principles.

●

**64. CIVIL PROCEDURE CODE, 1908 – Order 2 Rule 2 (3) and Order 7 Rule 11**

**Maintainability of suit – Objections – Objections under Order 2 Rule 2 (3) do not come under Order 7 Rule 11 CPC and such objections cannot be considered before trial.**

**सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 – आदेश 2 नियम 2 (3) एवं आदेश 7 नियम 11**

वाद की पोषणीयता – आक्षेप – आदेश 2 नियम 2 (3) के अंतर्गत आक्षेप, आदेश 7 नियम 11 के अंतर्गत नहीं आते हैं और ऐसे आक्षेपों को विचारण से पूर्व विचार में नहीं लिया जा सकता।

**Shubhalaya Villa (M/s) & ors. v. Vishandas Parwani & ors.**

**Judgment dated 15.05.2020 passed by the High Court of Madhya Pradesh in First Appeal No. 279 of 2017, reported in ILR (2020) MP 1704**

**Relevant extracts from the judgment:**

The finding given by the Court below holding that the suit is barred is also not sustainable and is hereby set aside. The counsel for the respondents relied upon several decisions as quoted hereinabove [*Pramod Kumar and anr. v. Zalak Singh and ors.*, (2019) 6 SCC 621, *Virgo Industries (Eng.) Private Limited v. Venture*

*Retech Solutions Private Limited, (2013) 1 SCC 625, Hardesh Ores (P) Ltd. v. Hede and Company, (2007) 5 SCC 614, N.V. Srinivasa Murthy and ors. v. Mariyamma and ors., (2005) 5 SCC 548, Sopan Sukhdeo Sable and ors. v. Assistant Charity Commissioner and ors., (2004) 3 SCC 137, ITC Limited v. Debts Recovery Appellate Tribunal and ors., (1998) 2 SCC 70 and T. Arivandandam v. T.V. Satyapal and anr., (1977) 4 SCC 467], but in none of the decisions this aspect has been considered by the Court except in a case of *P. Shyamla v. Ravi, 2015 (3) CTC 259* that while deciding the application under Order VII Rule 11 of CPC filed at the initial stage of suit, the suit can be dismissed at the threshold on the ground that the same is not maintainable under the provisions of Order II Rule 2(3) of CPC, as has already been observed hereinabove that deciding such a technical bar by the Court, an application under Order VII Rule 11 of CPC is not the appropriate stage.*



**\*65. CIVIL PROCEDURE CODE, 1908 – Order 6 Rule 2, Order 7 Rule 14 and Order 18 Rule 2**

**CIVIL PRACTICE:**

**Application to summon records – After conclusion of evidence when case fixed for final arguments – Absence of pleadings on issue in which evidence was sought – Held, such an application is not maintainable – In absence of pleading, no amount of evidence will help the party.**

**सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 – आदेश 6 नियम 2, आदेश 7 नियम 14 एवं आदेश 18 नियम 2**

**सिविल प्रथा:**

**अभिलेख आहूत करने संबंधी आवेदन – साक्ष्य पूर्ण होने के उपरांत जब मामला अंतिम तर्क हेतु नियत था – जिस विवादक पर साक्ष्य प्रस्तावित थी उस पर कोई अभिवचन नहीं था – अभिनिर्धारित, ऐसा आवेदन पोषणीय नहीं है – अभिवचन के अभाव में कितनी भी साक्ष्य हो पक्षकार की सहायता नहीं कर सकती।**

**Biraji @ Brijraji and anr. v. Surya Pratap and ors.**

**Judgment dated 03.11.2020 passed by the Supreme Court in Civil Appeal No. 4883 of 2017, reported in (2020) 10 SCC 729 (Three Judge Bench)**



**\*66. CIVIL PROCEDURE CODE, 1908 – Order 7 Rule 14 and Order 8 Rule 1-A**

**Production of documents at later stage of trial – Approach expected of courts, explained – Held, procedure is the handmaid of justice – Courts should take a lenient view upon such applications and lean towards substantial justice rather than relying upon procedural violation – Instantly, application for taking documents on record filed by defendant at the stage of defendant's evidence – Cogent**

reasons given explaining delay – Undoubtedly, documents were necessary for just decision of case hence directed to be taken on record.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 – आदेश 7 नियम 14 एवं आदेश 8 नियम 1—क

विचारण के पश्चातवर्ती चरणों में दस्तावेजों की प्रस्तुति – न्यायालयों से अपेक्षित दृष्टिकोण समझाया गया – अभिनिर्धारित, प्रक्रिया न्याय की दासी है – न्यायालयों को ऐसे आवेदनों पर एक उदार दृष्टिकोण रखते हुए प्रक्रियात्मक उल्लंघन पर केन्द्रित होने के स्थान पर सारभूत न्याय की ओर झुकाव रखना चाहिए – हस्तगत मामले में प्रतिवादी साक्ष्य के प्रक्रम पर प्रतिवादी ने दस्तावेज अभिलेख पर लेने हेतु आवेदन प्रस्तुत किया – विलंब को स्पष्ट करने वाले ठोस कारण दर्शाए गए – निःसंदेह, दस्तावेज मामले के न्यायसंगत निराकरण के लिए आवश्यक थे, अतः दस्तावेजों को अभिलेख पर लेने हेतु निर्देशित किया गया।

**Sugandhi (Dead) by LRs. and anr. v. P. Rajkumar represented by his Power Agent Imam Oli**

Order dated 13.10.2020 passed by the Supreme Court in Civil Appeal No. 3427 of 2020, reported in (2020) 10 SCC 706



#### 67. CRIMINAL PRACTICE:

##### APPRECIATION OF EVIDENCE:

Reasonable doubt – It refers to the degree of certainty required of a court before it can make a legally valid determination of the guilt of an accused.

आपराधिक प्रथा:

साक्ष्य का मूल्यांकन:

युक्तियुक्त संदेह – यह न्यायालय द्वारा एक अभियुक्त के अपराध की वैधानिक प्रमाणिकता का निर्धारण कर सकने के पूर्व की वांछित निश्चितता की मात्रा को संदर्भित करता है।

**Rajesh Dhiman v. State of Himachal Pradesh**

Judgment dated 26.10.2020 passed by the Supreme Court in Criminal Appeal No. 1032 of 2013, reported in 2020 (4) Crimes 382 (SC) (Three Judge Bench)

##### Relevant extracts from the judgment:

The expression “reasonable doubt” is a well defined connotation. It refers to the degree of certainty required of a court before it can make a legally valid determination of the guilt of an accused. These words are inbuilt measures to ensure that innocence is to be presumed unless the court finds no reasonable doubt of the guilt of the person charged. Reasonable doubt does not mean that

proof be so clear that no possibility of error exists. In other words, the evidence must only be so conclusive that all reasonable doubts are removed from the mind of an ordinary person.



**\*68. CRIMINAL PRACTICE:**

**Order sheets – Facts mentioned in order sheets should be treated as *prima facie* true and its sanctity should not be doubted.**

**आपराधिक प्रथा:**

आदेश पत्रिकाएं – आदेश पत्रिकाओं में वर्णित तथ्यों को प्रथम दृष्टया सत्य माना जाना चाहिए एवं उसकी शुद्धता पर संदेह नहीं किया जाना चाहिए।

**Ashish Wadhwa v. Smt. Nidhi Wadhwa & anr.**

Judgment dated 15.11.2019 passed by the High Court of Madhya Pradesh (Gwalior Bench) in Writ Petition No. 20361 of 2019, reported in ILR (2020) MP Short Note 13



**69. CRIMINAL PROCEDURE CODE, 1973 – Sections 26, 27, 177 to 184, 461 and 462**

**CIVIL PROCEDURE CODE, 1908 – Section 21 and Order 7 Rule 10**

- (i) Jurisdiction of courts – Factors governing determination of – Explained – Difference between jurisdiction of civil and criminal courts and objection as to jurisdiction explained.
- (ii) Territorial jurisdiction of criminal courts – Determination of – Principles summarized.
- (iii) Irregularities as to territorial jurisdiction – Effect of – Explained – Clause (I) of Section 461 CrPC uses the term “offender” and not “offence” – “Offender” relates to competency of court to try, while “offence” is limited to territorial jurisdiction – Where controversy involves territorial jurisdiction, Section 462 CrPC comes into operation.
- (iv) Objection as to competency of criminal court and territorial jurisdiction – Held, depends upon facts to be established through evidence – Such objections may have to be taken before the court trying the offence and such court is bound to consider the same.

**दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 – धाराएं 26, 27, 177 से 184, 461 एवं 462**

**सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 – धारा 21 एवं आदेश 7 नियम 10**

- (i) न्यायालयों का क्षेत्राधिकार – निर्धारण करने वाले कारक – स्पष्टीकृत – सिविल और आपराधिक न्यायालयों के क्षेत्राधिकार के अंतर और क्षेत्राधिकार संबंधी आपत्ति स्पष्ट की गई।
- (ii) आपराधिक न्यायालयों का प्रादेशिक क्षेत्राधिकार – निर्धारण – सिद्धांत समेकित किए गए।

- (iii) प्रादेशिक क्षेत्राधिकार में अनियमितताएं – प्रभाव – व्याख्या की गई – द.प्र.सं. की धारा 461 का खंड (ठ) में “अपराधी” शब्द का उपयोग हुआ है “अपराध” नहीं – “अपराधी” शब्द विचारण करने की न्यायालय की अधिकारिता से संबंधित है, जबकि “अपराध” प्रादेशिक क्षेत्राधिकार तक सीमित है – जहां विवाद प्रादेशिक क्षेत्राधिकार से संबंधित हो, वहां धारा 462 द.प्र.सं. लागू होगी।
- (iv) आपराधिक न्यायालय की अधिकारिता और प्रादेशिक क्षेत्राधिकार संबंधी आपत्ति – अभिनिर्धारित, साक्ष्य द्वारा स्थापित किए जाने वाले तथ्यों पर निर्भर करती है – इस प्रकार की आपत्तियां विचारण करने वाले न्यायालय के समक्ष उठाई जानी चाहिए और ऐसे न्यायालय उन आपत्तियों पर विचार करने के लिए बाध्य होंगे।

**Kaushik Chatterjee v. State of Haryana and ors.**

**Judgment dated 30.09.2020 passed by the Supreme Court in Transfer Petition (Crl.) No. 456 of 2019, reported in (2020) 10 SCC 92 (Three Judge Bench)**

**Relevant extracts from the judgment:**

While jurisdiction of a civil court is determined by (i) territorial and (ii) pecuniary limits, the jurisdiction of a criminal court is determined by (i) the offence and/or (ii) the offender. But the main difference between the question of jurisdiction raised in civil cases and the question of jurisdiction arising in criminal cases, is two-fold.

The first is that the stage at which an objection as to jurisdiction, territorial or pecuniary, can be raised, is regulated in civil proceedings by Section 21 of the Code of Civil Procedure, 1908. There is no provision in the Criminal Procedure Code akin to Section 21 of the Code of Civil Procedure.

The second is that in civil proceedings, a plaint can be returned, under Order 7 Rule 10 CPC, to be presented to the proper court, at any stage of the proceedings. But in criminal proceedings, a limited power is available to a Magistrate under Section 201 of the Criminal Procedure Code, to return a complaint. The power is limited in the sense (a) that it is available before taking cognizance, as Section 201 uses the words “Magistrate who is not competent to take cognizance” and (b) that the power is limited only to complaints, as the word “complaint”, as defined by Section 2(d), does not include a “police report”.

Chapter XIII of the Code of Criminal Procedure, 1973 contains provisions relating to jurisdiction of criminal courts in inquiries and trials. The Code maintains a distinction between (i) inquiry; (ii) investigation; and (iii) trial. The words “inquiry” and “investigation” are defined respectively, in clauses (g) and (h) of Section 2 of the Code.

Every offence should ordinarily be inquired into and tried by a court within whose local jurisdiction it was committed. This rule is found in Section 177. The expression “local jurisdiction” found in Section 177 is defined in Section 2(j) to



mean “in relation to a court or Magistrate, means the local area within which the court or Magistrate may exercise all or any of its or his powers under the Code”.

In case of uncertainty about the place in which, among the several local areas, an offence was committed, the Court having jurisdiction over any of such local areas may inquire into or try such an offence.

Where an offence is committed partly in one area and partly in another, it may be inquired into or tried by a court having jurisdiction over any of such local areas.

In the case of a continuing offence which is committed in more local areas than one, it may be inquired into or tried by a court having jurisdiction over any of such local areas.

Where an offence consists of several acts done in different local areas it may be inquired into or tried by a court having jurisdiction over any of such local areas. (Numbers 2 to 5 are traceable to Section 178)

Where something is an offence by reason of the act done, as well as the consequence that ensued, then the offence may be inquired into or tried by a court within whose local jurisdiction either the act was done or the consequence ensued. (Section 179)

In cases where an act is an offence, by reason of its relation to any other act which is also an offence, then the first mentioned offence may be inquired into or tried by a court within whose local jurisdiction either of the acts was done. (Section 180)

In certain cases such as dacoity, dacoity with murder, escaping from custody, etc., the offence may be inquired into and tried by a court within whose local jurisdiction either the offence was committed or the accused person was found.

In the case of an offence of kidnapping or abduction, it may be inquired into or tried by a court within whose local jurisdiction the person was kidnapped or conveyed or concealed or detained.

The offences of theft, extortion or robbery may be inquired into or tried by a court within whose local jurisdiction, the offence was committed or the stolen property was possessed, received or retained.

An offence of criminal misappropriation or criminal breach of trust may be inquired into or tried by a court within whose local jurisdiction the offence was committed or any part of the property was received or retained or was required to be returned or accounted for by the accused person.

An offence which includes the possession of stolen property, may be inquired into or tried by a court within whose local jurisdiction the offence was committed or the stolen property was possessed by any person, having knowledge that it is stolen property. (Nos. 8 to 12 are found in Section 181)

An offence which includes cheating, if committed by means of letters or telecommunication messages, may be inquired into or tried by any court within whose local jurisdiction such letters or messages were sent or received.

An offence of cheating and dishonestly inducing delivery of the property may be inquired into or tried by a court within whose local jurisdiction the property was delivered by the person deceived or was received by the accused person.

Some offences relating to marriage such as Section 494 IPC (marrying again during the lifetime of husband or wife) and Section 495 IPC (committing the offence under Section 494 with concealment of former marriage) may be inquired into or tried by a court within whose local jurisdiction the offence was committed or the offender last resided with the spouse by the first marriage. (Nos. 13 to 15 are found in Section 182)

An offence committed in the course of a journey or voyage may be inquired into or tried by a court through or into whose local jurisdiction that person or thing passed in the course of that journey or voyage. (Section 183).

Cases falling under Section 219 (*three offences of the same kind committed within a space of twelve months whether in respect of the same person or not*), cases falling under Section 220 (commission of more offences than one, in one series of acts committed together as to form the same transaction) and cases falling under Section 221, (where it is doubtful what offences have been committed), may be inquired into or tried by any court competent to inquire into or try any of the offences (Section 184).

x      x      x

Section 460 lists out 9 irregularities, which, if done in good faith by the Magistrate, may not vitiate his proceedings. Section 461 lists out 17 irregularities, which if done by the Magistrate, will make the whole proceedings void. Clause (l) of Section 461 is of significance and it reads as follows:

***“461. Irregularities which vitiate proceedings.—***If any Magistrate, not being empowered by law in this behalf, does any of the following things, namely—

(a)-(k) \*\*\*

(l) tries an offender:

\*\*\*

his proceedings shall be void”

Then comes Section 462, which saves the proceedings that had taken place in a wrong Sessions Division or district or local area. But this is subject to the condition that no failure of justice has occasioned on account of the mistake. Section 462 reads as follows:

***“462. Proceedings in wrong place.—***No finding, sentence or order of any criminal court shall be set aside merely on the ground that the inquiry, trial or other proceedings in the course of which it was arrived at or passed, took place in a wrong Sessions Division, district, sub-division or other local

area, unless it appears that such error has in fact occasioned a failure of justice.”

A cursory reading of Sections 461(l) and 462 gives an impression that there is some incongruity. Under clause (l) of Section 461 if a Magistrate not being empowered by law to try an offender, wrongly tries him, his proceedings shall be void. A proceeding which is void under Section 461 cannot be saved by Section 462. The focus of clause (l) of Section 461 is on the “offender” and not on the “offence”. If clause (l) had used the words “tries an offence” rather than the words “tries an offender”, the consequence might have been different.

It is significant to note that Section 460, which lists out nine irregularities that would not vitiate the proceedings, uses the word “offence” in three places, namely, clauses (b), (d) and (e). Section 460 does not use the word “offender” even once.

On the contrary Section 461 uses the word “offence” only once, namely, in clause (a), but uses the word “offender” twice, namely, in clauses (l) and (m). Therefore, it is clear that if an offender is tried by a Magistrate not empowered by law in that behalf, his proceedings shall be void under Section 461. Section 462 does not make the principle contained therein to have force notwithstanding anything contained in Section 461.

x      x      x

In other words, the jurisdiction of a criminal court is normally relatable to the offence and in some cases, to the offender, such as cases where the offender is a juvenile (Section 27) or where the victim is a women [the proviso to clause (a) of Section 26]. But Section 461(l) focuses on the offender and not on the offence.

x      x      x

It was specifically held by this Court in *Raj Kumari Vijn v. Dev Raj Vijn*, (1977) 2 SCC 190 that the question of jurisdiction with respect to the power of the court to try particular kinds of offences goes to the root of the matter and that any transgression of the same would make the entire trial void. However, territorial jurisdiction, according to this Court “is a matter of convenience, keeping in mind the administrative point of view with respect to the work of a particular court, the convenience of the accused and the convenience of the witnesses who have to appear before the Court”.

After making such a distinction between two different types of jurisdictional issues, this Court concluded in that case, that where a Magistrate has the power to try a particular offence, but the controversy relates solely to his territorial jurisdiction, the case would normally be covered by the saving clause under Section 531 of the 1898 Code (present Section 462 of the 1973 Code).

From the above discussion, it is possible to take a view that the words “tries an offence” are more appropriate than the words “tries an offender” in Section 461(l). This is because, lack of jurisdiction to try an offence cannot be cured by Section 462 and hence Section 461, logically, could have included the

trial of an offence by a Magistrate, not empowered by law to do so, as one of the several items which make the proceedings void. In contrast, the trial of an offender by a court which does not have territorial jurisdiction, can be saved because of Section 462, provided there is no other bar for the court to try the said offender (such as in Section 27). But Section 461(l) makes the proceedings of a Magistrate void, if he tried an offender, when not empowered by law to do.

But be that as it may, the upshot of the above discussion is:

(i) That the issue of jurisdiction of a court to try an "offence" or "offender" as well as the issue of territorial jurisdiction, depend upon facts established through evidence.

(ii) That if the issue is one of territorial jurisdiction, the same has to be decided with respect to the various rules enunciated in sections 177 to 184 of the Code.

(iii) That these questions may have to be raised before the court trying the offence and such court is bound to consider the same.



#### **70. CRIMINAL PROCEDURE CODE, 1973 – Sections 100 and 166**

##### **INDIAN PENAL CODE, 1860 – Section 302**

##### **CRIMINAL TRIAL:**

- (i) **Seizure during investigation – Non-compliance of statutory provisions contained u/s 100(4), 166(3) and 166(4) – Effect of – Held, non-compliance of aforesaid provisions alone may not be a ground to acquit the accused – But in a case where recovery is seriously doubted, non-compliance of aforesaid provisions play an important role.**
- (ii) **Motive; absence of – Cases based on circumstantial evidence – Effect of – Absence of motive cannot be a ground to reject the prosecution case – However, absence of motive in a case based on circumstantial evidence is a factor that weighs in favour of the accused.**

**दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 – धाराएं 100 एवं 166**

**भारतीय दण्ड संहिता, 1860 – धारा 302**

##### **आपराधिक विचारण:**

- (i) **अनुसंधान के दौरान जप्ती – धारा 100(4), 166(3) और 166(4) के वैधानिक प्रावधानों का पालन न करना – प्रभाव – अभिनिर्धारित, मात्र उपरोक्त प्रावधानों का पालन न करना, अभियुक्त की दोषमुक्ति का आधार नहीं हो सकता है – परन्तु ऐसे मामले में जहां जप्ती गंभीर संदेह युक्त हो, उपरोक्त प्रावधानों का अनुपालन न करना महत्वपूर्ण हो जाता है।**

- (ii) हेतुक का अभाव – परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित मामले – प्रभाव – हेतुक का अभाव अभियोजन के मामले को खारिज करने का आधार नहीं हो सकता है – तथापि, परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित मामलों में हेतुक का अभाव एक ऐसा कारक है जो अभियुक्त के पक्ष में जाता है।

**Anwar Ali and anr. v. State of Himachal Pradesh**

**Judgment dated 25.09.2020 passed by the Supreme Court in Criminal Appeal No. 1121 of 2016, reported in (2020) 10 SCC 166 (Three Judge Bench)**

**Relevant extracts from the judgment:**

Even the recovery of jeep from Chandigarh and recovery of photographs and the recovery of mobile phone belonging to PW 7 from the jeep also create serious doubts. According to the prosecution and the IO, he received a secret information that one jeep is lying in abandoned condition on the Chandigarh road and though the distance was around 300 km, he straightaway went to Chandigarh and recovered the jeep in the presence of Bhunter people brought by him. The investigating officer did not follow the procedure as required to be followed under Sections 166(3) and (4) CrPC. Even he did not comply with the provisions of Section 100(4) CrPC. Non-following of the aforesaid provisions alone may not be a ground to acquit the accused. However, considering the overall surrounding circumstances and in a case where recovery is seriously doubted, non-compliance of the aforesaid play an important role.

X X X

Now so far as the submission on behalf of the accused that in the present case the prosecution has failed to establish and prove the motive and therefore the accused deserves acquittal is concerned, it is true that the absence of proving the motive cannot be a ground to reject the prosecution case. It is also true and as held by this Court in *Suresh Chandra Bahri v. State of Bihar, 1995 Supp (1) SCC 80* that if motive is proved that would supply a link in the chain of circumstantial evidence but the absence thereof cannot be a ground to reject the prosecution case. However, at the same time, as observed by this Court in *Babu v. State of Kerala, (2010) 9 SCC 189*, absence of motive in a case depending on circumstantial evidence is a factor that weighs in favour of the accused.



**71. CRIMINAL PROCEDURE CODE, 1973 – Sections 154 and 313  
INDIAN PENAL CODE, 1860 – Sections 90 and 376  
PROTECTION OF CHILDREN FROM SEXUAL OFFENCES ACT, 2012 –  
Section 6**

**APPRECIATION OF EVIDENCE:**

- (i) **Sexual offences – Age of prosecutrix – Assessment of –**  
**Prosecutrix stated her age to be 16 and corrected it to 13 in**  
**deposition – She further stated that four years ago her modesty**

was outraged by accused when she was on her way to school – No name of school was stated by any witness nor any documentary evidence such as school register was produced to prove her age – Medical expert assessed her age to be 25 years – Her cousin, aged 30 deposed that she was 6 years younger to him – Held, in absence of any positive evidence with regard to the age of prosecutrix on the date of occurrence, benefit of doubt has to be given to accused.

- (ii) Examination of accused – Failure to put circumstances against accused in his examination u/s 313 CrPC – Effect of – Held, such circumstances must be excluded from consideration by courts.
- (iii) Delay in lodging FIR – Effect of – Sexual offences – Prosecutrix and accused belonged to different religions – Both were known to each other – Letters exchanged between them show that their love for each other grew and matured over time – Their physical relations were not sporadic but, regular over the years – FIR was lodged at an opportune time of seven days prior to accused's marriage with another girl – All these facts raise serious doubt about truthfulness of allegations.
- (iv) Consent to physical relationship – Whether given under misconception of fact or fraudulent promise of marriage – Determination of – Held, misconception of fact u/s 90 IPC must be in proximity of time of occurrence – Prosecutrix and accused were in love with each other, their engagement ceremony was also performed, accused wanted to marry in temple but family of prosecutrix insisted for marriage in church – Marriage could not be solemnized because of societal reasons – Held, consent of prosecutrix was a conscious and informed choice coupled with positive action not to protest and there is no fraudulent promise of marriage.

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 – धाराएं 154 एवं 313

भारतीय दण्ड संहिता, 1860 – धाराएं 90 एवं 376

लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम, 2012 – धारा 6

साक्ष्य का मूल्यांकन:

- (i) लैंगिक अपराध – अभियोक्त्री की आयु – आंकलन – अभियोक्त्री ने अपनी आयु 16 वर्ष बताई और बयान में इसे सुधारकर 13 वर्ष कर दिया – उसने आगे कहा कि चार वर्ष पूर्व स्कूल जाने के रास्ते में अभियुक्त ने उसकी लज्जा भंग की थी – किसी भी साक्षी ने स्कूल का नाम नहीं बताया न ही कोई दस्तावेजी साक्ष्य जैसे स्कूल रजिस्टर प्रस्तुत कर अभियोक्त्री की आयु प्रमाणित करने का प्रयास किया गया था – चिकित्सीय विशेषज्ञ ने अभियोक्त्री की आयु 25 वर्ष होने का अभिमत दिया – अभियोक्त्री के चचेरे भाई जिसकी आयु 30 वर्ष थी, ने बयान

दिया कि अभियोक्त्री उससे 6 वर्ष छोटी थी – अभिनिर्धारित, घटना दिनांक को अभियोक्त्री की आयु के संबंध में किसी भी सकारात्मक साक्ष्य के अभाव में संदेह का लाभ अभियुक्त को प्रदान किया जाना चाहिए।

- (ii) अभियुक्त का परीक्षण – अभियुक्त के विरुद्ध आई परिस्थितियों को धारा 313 दं.प्र.सं. के अधीन उसके परीक्षण में प्रस्तुत करने में विफलता – प्रभाव – अभिनिर्धारित, ऐसी परिस्थितियों पर न्यायालय द्वारा विचार नहीं किया जाना चाहिए।
- (iii) प्रथम सूचना रिपोर्ट लेख कराने में विलंब – प्रभाव – लैंगिक अपराध – अभियोक्त्री व अभियुक्त अलग-अलग धर्मों के थे – दोनों एक-दूसरे से परिचित थे – उनके बीच आदान-प्रदान किए गए पत्रों से प्रकट होता है कि एक-दूसरे के लिए उनका प्रेम समय के साथ बढ़ा और परिपक्व हुआ – शारीरिक संबंध छिटपुट नहीं थे, अपितु वर्षों तक नियमित थे – प्रथम सूचना रिपोर्ट एक उपयुक्त समय पर दर्ज कराई गई थी, जब सात दिवस उपरांत दूसरी लड़की से अभियुक्त का विवाह तय था – ये सभी तथ्य आरोपों की सत्यता पर गंभीर संदेह उत्पन्न करते हैं।
- (iv) शारीरिक संबंध के लिए सहमति – तथ्य के भ्रम में अथवा विवाह के कपटपूर्ण वचन के अधीन दी गई – निर्धारण – अभिनिर्धारित, भा.द.सं. की धारा 90 के अधीन तथ्य का भ्रम घटना के संनिर्गत में होना चाहिए – अभियोक्त्री व अभियुक्त एक-दूसरे के प्रेम में थे, उनकी सगाई भी हुई थी, अभियुक्त मंदिर में विवाह करना चाहता था, परन्तु अभियोक्त्री के परिवारजन ने चर्च में विवाह के लिए जोर दिया – सामाजिक कारणों से विवाह नहीं हो सका था – अभिनिर्धारित, अभियोक्त्री की सहमति एक सजग और सूचित विकल्प था, जो विरोध न करने के सकारात्मक कृत्य से समर्थित था, यहां विवाह का कोई कपटपूर्ण वचन नहीं है।

### **Maheshwar Tigga v. State of Jharkhand**

**Judgment dated 28.09.2020 passed by the Supreme Court in Criminal Appeal No. 635 of 2020, reported in (2020) 10 SCC 108 (Three Judge Bench)**

#### **Relevant extracts from the judgment:**

The prosecutrix in her deposition dithered with regard to her age by first stating she was sixteen years on the date of occurrence and then corrected herself to state she was thirteen. Though she alleged that the appellant outraged her modesty at the point of a knife while she was on way to school, no name of the school has been disclosed either by the prosecutrix or her parents PWs 5 and 6. If the prosecutrix was studying in a school there is no explanation why proof of age was not furnished on basis of documentary evidence such as school register, etc. PW 10, in cross-examination assessed the age of the prosecutrix to be approximately twenty-five years. PW 2, the cousin (brother) of the prosecutrix aged about 30 years deposed that she was six years younger to

him. There is thus wide variation in the evidence with regard to the age of the prosecutrix. The Additional Judicial Commissioner held the prosecutrix to be fourteen years of age applying the rule of the thumb on basis of the age disclosed by her in deposition on 18-8-2001 as 20 years. In absence of positive evidence being led by the prosecution with regard to the age of the prosecutrix on the date of occurrence, the possibility of her being above the age of eighteen years on the date cannot be ruled out. The benefit of doubt, therefore, has to be given to the appellant.

X      X      X

It stands well settled that circumstances not put to an accused under Section 313 CrPC cannot be used against him, and must be excluded from consideration. In a criminal trial, the importance of the questions put to an accused are basic to the principles of natural justice as it provides him the opportunity not only to furnish his defence, but also to explain the incriminating circumstances against him. A probable defence raised by an accused is sufficient to rebut the accusation without the requirement of proof beyond reasonable doubt.

X      X      X

The appellant belonged to the Scheduled Tribe while the prosecutrix belonged to the Christian community. They professed different religious beliefs in a traditional society. They both resided in the same Village Basjadi and were known to each other. The nature and manner of allegations, coupled with the letters exchanged between them, marked as exhibits during the trial, make it apparent that their love for each other grew and matured over a sufficient period of time. They were both smitten by each other and passions of youth ruled over their minds and emotions. The physical relations that followed was not isolated or sporadic in nature, but regular over the years. The prosecutrix had even gone and resided in the house of the appellant. In our opinion, the delay of four years in lodgement of the FIR, at an opportune time of seven days prior to the appellant solemnising his marriage with another girl, on the pretext of a promise to the prosecutrix raises serious doubts about the truth and veracity of the allegations levelled by the prosecutrix. The entire genesis of the case is in serious doubt in view of the admission of the prosecutrix in cross-examination that no incident had occurred on 9-4-1999.

The parents of the prosecutrix, PWs 5 and 6 both acknowledged awareness of the relationship between appellant and the prosecutrix and that they were informed after the first occurrence itself but offer no explanation why they did not report the matter to the police immediately. On the contrary, PW 5 acknowledges that the appellant insisted on marrying in the Temple to which they were not agreeable and wanted the marriage to be solemnised in the Church. They further acknowledged that the appellant and the prosecutrix were in love with each other. Contrary to the claim of the prosecutrix, PW 6 stated that the prosecutrix was sexually assaulted in her own house.



The prosecutrix acknowledged that an engagement ceremony had also been performed. She further deposed that the marriage between them could not be solemnised because they belonged to different religions. She was therefore conscious of this obstacle all along, even while she continued to establish physical relations with the appellant. If the appellant had married her, she would not have lodged the case. She denied having written any letters to the appellant, contrary to the evidence placed on record by the defence. The amorous language used by both in the letters exchanged reflect that the appellant was serious about the relationship desiring to culminate the same into marriage. But unfortunately for societal reasons, the marriage could not materialise as they belonged to different communities.

The question for our consideration is whether the prosecutrix consented to the physical relationship under any misconception of fact with regard to the promise of marriage by the appellant or was her consent based on a fraudulent misrepresentation of marriage which the appellant never intended to keep since the very inception of the relationship. If we reach the conclusion that he intentionally made a fraudulent misrepresentation from the very inception and the prosecutrix gave her consent on a misconception of fact, the offence of rape under Section 375 IPC is clearly made out. It is not possible to hold in the nature of evidence on record that the appellant obtained her consent at the inception by putting her under any fear. Under Section 90 IPC a consent given under fear of injury is not a consent in the eye of the law. In the facts of the present case, we are not persuaded to accept the solitary statement of the prosecutrix that at the time of the first alleged offence her consent was obtained under fear of injury.

Under Section 90 IPC, a consent given under a misconception of fact is no consent in the eye of the law. But the misconception of fact has to be in proximity of time to the occurrence and cannot be spread over a period of four years. It hardly needs any elaboration that the consent by the appellant was a conscious and informed choice made by her after due deliberation, it being spread over a long period of time coupled with a conscious positive action not to protest. The prosecutrix in her letters to the appellant also mentions that there would often be quarrels at her home with her family members with regard to the relationship, and beatings given to her.

The prosecutrix was herself aware of the obstacles in their relationship because of different religious beliefs. An engagement ceremony was also held in the solemn belief that the societal obstacles would be overcome, but unfortunately differences also arose whether the marriage was to be solemnised in the church or in a temple and ultimately failed. It is not possible to hold on the evidence available that the appellant right from the inception did not intend to marry the prosecutrix ever and had fraudulently misrepresented only in order to establish physical relation with her. The prosecutrix in her letters acknowledged that the appellant's family was always very nice to her.



72. **CRIMINAL PROCEDURE CODE, 1973 – Sections 156 (3), 173 and 190**  
**INDIAN PENAL CODE, 1860 – Sections 379 and 411**  
**MINES AND MINERALS (DEVELOPMENT AND REGULATION) ACT, 1957**  
**– Sections 4, 21, 22 and 23A**  
**M.P. MINERALS (PREVENTION OF ILLEGAL MINING, TRANSPORTATION**  
**AND STORAGE) RULES, 2006 – Rule 18**

Illegal sand mining – Powers of Magistrate – Cognizance – Magistrate, u/s 156 (3) CrPC can direct the concerned SHO of the police station to register FIR for the offences under IPC and the MMDR Act, 1957 also – However, cognizance for the offence of MMDR Act can be taken on complaint filed by the authorized officer only.

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 – धाराएं 156 (3), 173 एवं 190

भारतीय दण्ड संहिता, 1860 – धाराएं 379 एवं 411

खान और खनिज (विकास और विनियमन) अधिनियम, 1957 – धाराएं 4, 21, 22 एवं 23क

मध्यप्रदेश खनिज (अवैध खनन, परिवहन और भण्डारण का निवारण) नियम, 2006 – नियम 18

अवैध रेत खनन – मजिस्ट्रेट की शक्तियां – संज्ञान – मजिस्ट्रेट दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 156 (3) के अंतर्गत पुलिस स्टेशन के संबंधित भारसाधक अधिकारी को भारतीय दण्ड संहिता के साथ खान और खनिज (विकास और विनियमन) अधिनियम, 1957 के अपराधों हेतु भी प्रथम सूचना रिपोर्ट पंजीबद्ध करने हेतु निर्देशित कर सकता है यद्यपि खान और खनिज (विकास और विनियमन) अधिनियम, 1957 के अपराधों का संज्ञान केवल प्राधिकृत अधिकारी द्वारा प्रस्तुत परिवाद पर ही लिया जा सकता है।

**Jayant etc. v. State of Madhya Pradesh**

**Judgment dated 03.12.2020 passed by the Supreme Court in Criminal Appeal No. 824 of 2020, reported in 2020 (4) Crimes 485 (SC)**

**Relevant extracts from the judgment:**

After giving our thoughtful consideration in the matter, in the light of the relevant provisions of the MMDR Act and the Rules made thereunder *vis-à-vis* the Code of Criminal Procedure and the Penal Code, and the law laid down by this Court in the cases in *Supdt. & Remembrancer of Legal Affairs v. Abani Kumar Banerjee*, AIR 1950 Cal. 437, *R.R. Chari v. State of U.P.*, AIR 1951 SC 207 (Three-Judge Bench), *A.R. Antulay v. Ramdas Srinivas Nayak*, (1984) 2 SCC 500 (five-Judge Bench), *State of W.B. v. Mohd. Khalid*, (1995) 1 SCC 684, *State of Karnataka v. Pastor P. Raju*, (2006) 6 SCC 728, *Anil Kumar v. M.K. Aiyappa*, (2013) 10 SCC 705 and *State (NCT of Delhi) v. Sanjay*, (2014) 9 SCC 772 our conclusions are as under:

- (i) that the learned Magistrate can in exercise of powers under Section 156(3) of the Code order/direct the concerned In-charge/SHO of the police station to lodge/register crime case/FIR even for the offences under the MMDR Act and the Rules made thereunder and at this stage the bar under Section 22 of the MMDR Act shall not be attracted;
- (ii) the bar under Section 22 of the MMDR Act shall be attracted only when the learned Magistrate takes cognizance of the offences under the MMDR Act and Rules made thereunder and orders issuance of process/summons for the offences under the MMDR Act and Rules made thereunder;
- (iii) for commission of the offence under the IPC, on receipt of the police report, the Magistrate having jurisdiction can take cognizance of the said offence without awaiting the receipt of complaint that may be filed by the authorised officer for taking cognizance in respect of violation of various provisions of the MMDR Act and Rules made thereunder; and
- (iv) that in respect of violation of various provisions of the MMDR Act and the Rules made thereunder, when a Magistrate passes an order under Section 156(3) of the Code and directs the concerned In-charge/SHO of the police station to register/lodge the crime case/FIR in respect of the violation of various provisions of the Act and Rules made thereunder and thereafter after investigation the concerned In-charge of the police station/investigating officer submits a report, the same can be sent to the concerned Magistrate as well as to the concerned authorised officer as mentioned in Section 22 of the MMDR Act and thereafter the concerned authorised officer may file the complaint before the learned Magistrate along with the report submitted by the concerned investigating officer and thereafter it will be open for the learned Magistrate to take cognizance after following due procedure, issue process/summons in respect of the violations of the various provisions of the MMDR Act and Rules made thereunder and at that stage it can be said that cognizance has been taken by the learned Magistrate.
- (v) in a case where the violator is permitted to compound the offences on payment of penalty as per sub-section 1 of Section 23A, considering sub-section 2 of Section 23A of the MMDR Act, there shall not be any proceedings or further proceedings against the offender in respect of the offences punishable under the MMDR Act or any rule made thereunder so compounded. However, the bar under sub-section 2 of Section 23A shall not affect any proceedings for the offences under the IPC, such as, Sections 379 and 414 IPC and the same shall be proceeded with further.



**73. CRIMINAL PROCEDURE CODE, 1973 – Sections 162, 227 and 228  
INDIAN PENAL CODE, 1860 – Sections 489-B and 489-C**

**EVIDENCE ACT, 1872 – Sections 25 and 26**

- (i) **Framing of charge – Requirement of – Court must be satisfied that with the material available, a case is made out for the accused to stand trial – The material must be such that can be translated into evidence at the stage of trial.**
- (ii) **Bar u/s 162 CrPC – Admission made in the course of investigation to a Police Officer will not be admissible u/s 162 of the CrPC**

**दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 – धाराएं 162, 227 एवं 228**

**भारतीय दण्ड संहिता, 1860 – धाराएं 489-ख एवं 489-ग**

**साक्ष्य अधिनियम, 1872 – धाराएं 25 एवं 26**

- (i) **आरोप की विरचना – आवश्यकता – न्यायालय को उपलब्ध विषय-वस्तु के आधार पर संतुष्ट होना चाहिए कि अभियुक्त का विचारण किए जाने के लिए प्रकरण बनता है – सामग्री निश्चित रूप से ऐसी हो जिसे विचारण के स्तर पर साक्ष्य में परिवर्तित किया जा सके।**
- (ii) **दं.प्र.सं. की धारा 162 के अंतर्गत प्रतिबंध – अन्वेषण के दौरान पुलिस अधिकारी से की गई स्वीकृति धारा 162 दं.प्र.सं. के अंतर्गत ग्राह्य नहीं होगी।**

**Dipakbhai Jagdishchandra Patel v. State of Gujarat and anr.**

**Judgment dated 24.04.2019 passed by the Supreme Court in Criminal Appeal No. 714 of 2019, reported in 2020 (3) Crimes 250 (SC)**

**Relevant extracts from the judgment:**

At the stage of framing the charge in accordance with the principles which have been laid down by this Court, what the Court is expected to do is, it does not act as a mere post office. The Court must indeed sift the material before it. The material to be sifted would be the material which is produced and relied upon by the prosecution. The sifting is not to be meticulous in the sense that the Court dons the mantle of the Trial Judge hearing arguments after the entire evidence has been adduced after a full-fledged trial and the question is not whether the prosecution has made out the case for the conviction of the accused. All that is required is, the Court must be satisfied that with the materials available, a case is made out for the accused to stand trial. A strong suspicion suffices. However, a strong suspicion must be founded on some material. The material must be such as can be translated into evidence at the stage of trial. The strong suspicion cannot be the pure subjective satisfaction based on the moral notions of the Judge that here is a case where it is possible that accused has committed the offence. Strong suspicion must be the suspicion which is premised on some material which commends itself to the court as sufficient to entertain the *prima facie* view that the accused has committed the offence.

From the statement of the law contained in *Central Bureau of Investigation v. V.C. Shukla and others*, AIR 1998 SC 1406, it becomes clear as to what constitutes confession and how if it does not constitute confession, it may still be an admission. Being an admission, it may be admissible under the Evidence Act provided that it meets the requirements of admission as defined in Section 17 of the Evidence Act. However, even if it is an admission, if it is made in the course of investigation under the Cr.PC to a Police Officer, then, it will not be admissible under Section 162 of the Cr.PC as it clearly prohibits the use of statement made to a Police Officer under Section 161 of the Cr.PC except for the purpose which is mentioned therein. Statement given under Section 161, even if relevant, as it contains an admission, would not be admissible, though an admission falling short of a confession which may be made otherwise, may become substantive evidence.



**74. CRIMINAL PROCEDURE CODE, 1973 – Section 167  
UNLAWFUL ACTIVITIES (PREVENTION) ACT, 1967 – Section 43-D  
NATIONAL INVESTIGATION AGENCY ACT, 2008 – Sections 11, 13, 16  
and 22**

- (i) Investigation – Extension of time of investigation from 90 days to 180 days under Special Statutes (UAPA, 1967) – Competency – Held, Special Court constituted under NIA Act, 2008 or in absence thereof, Court of Sessions alone is competent to extend time – Magistrate has no jurisdiction to extend such time period.
- (ii) Default bail – Indefeasible right of accused to be released on bail after expiry of stipulated period is not affected if application is not disposed of or is wrongly disposed of – Instantly, default bail application was rejected on the ground that time of 90 days to complete investigation was extended by Magistrate – Held, Special Court alone has jurisdiction to extend such time – Accused released on default bail.

**दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 – धारा 167**

**विधि विरुद्ध गतिविधियां (निवारण) अधिनियम, 1967 – धारा 43-घ**

**राष्ट्रीय अनुसंधान एजेन्सी अधिनियम, 2008 – धाराएं 11, 13, 16 एवं 22**

- (i) अनुसंधान – विशेष विधि (यूएपीए, 1967) के अंतर्गत अनुसंधान का समय 90 दिवस से 180 दिवस तक बढ़ाना – सक्षमता – अभिनिर्धारित, राष्ट्रीय अनुसंधान एजेन्सी अधिनियम, 2008 के अधीन गठित विशेष न्यायालय अथवा उसके अभाव में, सत्र न्यायालय ही समय बढ़ाने के लिए सक्षम है – मजिस्ट्रेट को ऐसी समयावधि बढ़ाने की कोई अधिकारिता नहीं है।
- (ii) व्यक्तिगत जमानत – निर्धारित अवधि की समाप्ति के बाद जमानत पर रिहा किए जाने का अभियुक्त का अजेय अधिकार आवेदन का निराकरण नहीं किए जाने अथवा आवेदन त्रुटिपूर्ण तरीके से निराकृत किए जाने से प्रभावित नहीं होता है

— हस्तगत मामले में, व्यतिक्रम जमानत आवेदन इस आधार पर खारिज कर दिया गया कि मजिस्ट्रेट द्वारा अनुसंधान पूर्ण करने की 90 दिवस की अवधि बढ़ा दी गई थी — अभिनिर्धारित, मात्र विशेष न्यायालय के पास ही ऐसे समय का विस्तार करने की अधिकारिता है — अभियुक्त को व्यतिक्रम जमानत का लाभ दिया गया।

**Bikramjit Singh v. State of Punjab**

**Judgment dated 12.10.2020 passed by the Supreme Court in Criminal Appeal No. 667 of 2020, reported in (2020) 10 SCC 616 (Three-Judge Bench)**

**Relevant extracts from the judgment:**

Section 13(1) of the NIA Act, which again begins with a non obstante clause which is notwithstanding anything contained in the Code, read with Section 22(2)(ii), states that every Scheduled Offence that is investigated by the investigation agency of the State Government is to be tried exclusively by the Special Court within whose local jurisdiction it was committed.

When these provisions are read along with Section 2(1)(d) and the provisos in Section 43-D(2) of the UAPA, the scheme of the two Acts, which are to be read together, becomes crystal clear. Under the first proviso in Section 43-D(2)(b), the 90-day period indicated by the first proviso to Section 167(2) of the Code can be extended up to a maximum period of 180 days if “the Court” is satisfied with the report of the Public Prosecutor indicating progress of investigation and specific reasons for detention of the accused beyond the period of 90 days. “The Court”, when read with the extended definition contained in Section 2(1)(d) of the UAPA, now speaks of the Special Court constituted under Section 22 of the NIA Act. What becomes clear, therefore, from a reading of these provisions is that for all offences under the UAPA, the Special Court alone has exclusive jurisdiction to try such offences. This becomes even clearer on a reading of Section 16 of the NIA Act which makes it clear that the Special Court may take cognizance of an offence without the accused being committed to it for trial upon receipt of a complaint of facts or upon a police report of such facts. What is equally clear from a reading of Section 16(2) of the NIA Act is that even though offences may be punishable with imprisonment for a term not exceeding 3 years, the Special Court alone is to try such offence — albeit in a summary way if it thinks it fit to do so. On a conspectus of the abovementioned provisions, Section 13 read with Section 22(2)(ii) of the NIA Act, in particular, the argument of the learned counsel appearing on behalf of the State of Punjab based on Section 10 of the said Act has no legs to stand on since the Special Court has exclusive jurisdiction over every Scheduled Offence investigated by the investigating agency of the State.

Before the NIA Act was enacted, offences under the UAPA were of two kinds — those with a maximum imprisonment of over 7 years, and those with a maximum imprisonment of 7 years and under. Under the Code as applicable to offences against other laws, offences having a maximum sentence of 7 years and under

are triable by the Magistrate's courts, whereas offences having a maximum sentence of above 7 years are triable by Courts of Session. This scheme has been completely done away with by the NIA Act, 2008 as all Scheduled Offences i.e. all offences under the UAPA, whether investigated by the National Investigation Agency or by the investigating agencies of the State Government, are to be tried exclusively by Special Courts set up under that Act. In the absence of any designated court by notification issued by either the Central Government or the State Government, the fallback is upon the Court of Session alone. Thus, under the aforesaid scheme what becomes clear is that so far as all offences under the UAPA are concerned, the Magistrate's jurisdiction to extend time under the first proviso in Section 43-D(2)(b) is non-existent, "the Court" being either a Sessions Court, in the absence of a notification specifying a Special Court, or the Special Court itself.

The second vexed question which arises on the facts of this case is the question of grant of default bail. It has already been seen that once the maximum period for investigation of an offence is over, under the first proviso (a) to Section 167(2), the accused shall be released on bail, this being an indefeasible right granted by the Code.

A conspectus of the aforesaid decisions would show that so long as an application for grant of default bail is made on expiry of the period of 90 days (which application need not even be in writing) before a charge-sheet is filed, the right to default bail becomes complete. It is of no moment that the criminal court in question either does not dispose of such application before the charge-sheet is filed or disposes of such application wrongly before such charge-sheet is filed. So long as an application has been made for default bail on expiry of the stated period before time is further extended to the maximum period of 180 days, default bail, being an indefeasible right of the accused under the first proviso to Section 167(2), kicks in and must be granted.

On the facts of the present case, the High Court was wholly incorrect in stating that once the challan was presented by the prosecution on 25.03.2019 as an application was filed by the appellant on 26.03.2019, the appellant is not entitled to default bail. First and foremost, the High Court has got the dates all wrong. The application that was made for default bail was made on or before 25.02.2019 and not 26.03.2019. The charge-sheet was filed on 26.03.2019 and not 25.03.2019. The fact that this application was wrongly dismissed on 25.02.2019 would make no difference and ought to have been corrected in revision. The sole ground for dismissing the application was that the time of 90 days had already been extended by the learned Sub-Divisional Judicial Magistrate, Ajnala by his order dated 13.02.2019. This order was correctly set aside by the Special Court by its judgment dated 25.03.2019, holding that under the UAPA read with the NIA Act, the Special Court alone had jurisdiction to extend time to 180 days under the first proviso in Section 43-D(2)(b). The fact that the appellant filed yet another application for default bail on 08.04.2019, would not mean that this application would wipe out the

effect of the earlier application that had been wrongly decided. We must not forget that we are dealing with the personal liberty of an accused under a statute which imposes drastic punishments. The right to default bail, as has been correctly held by the judgments of this Court, are not mere statutory rights under the first proviso to Section 167(2) of the Code, but is part of the procedure established by law under Article 21 of the Constitution of India, which is, therefore, a fundamental right granted to an accused person to be released on bail once the conditions of the first proviso to Section 167(2) are fulfilled.



**75. CRIMINAL PROCEDURE CODE, 1973 – Section 167 (2)**

- (i) **Default bail – Accrual of right – Only requirement for getting default bail u/s 167 (2) CrPC is that the investigation was not completed and no chargesheet is filed within 60/90 days.**
- (ii) **Imposing of condition – Whether necessary? Held, No – High Court while releasing the appellant on default bail has imposed the condition to deposit ₹ 8,00,000/- – Imposing condition of depositing the alleged amount while releasing the accused would frustrate the very object and purpose of default bail.**

**दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 – धारा 167(2)**

- (i) **व्यतिक्रम जमानत – अधिकार का उत्पन्न होना – व्यतिक्रम जमानत प्राप्त करने के लिए आवश्यकता केवल यह है कि धारा 167(2) के अंतर्गत 60 अथवा 90 दिवस में अन्वेषण पूर्ण नहीं हुआ हो और न ही अभियोग पत्र प्रस्तुत किया गया हो।**
- (ii) **शर्त अधिरोपित किया जाना – क्या आवश्यक है? अभिनिर्धारित, नहीं – उच्च न्यायालय द्वारा अपीलार्थी को व्यतिक्रम जमानत पर रिहा किए जाते समय ₹ 8,00,000/- रुपये निक्षिप्त करने की शर्त अधिरोपित की गई – अभियुक्त को जमानत पर रिहा किए जाते समय राशि निक्षिप्त करने की कथित शर्त अधिरोपित करना, अनिवार्य जमानत के उद्देश्य एवं प्रयोजन को निरुत्साहित करना होगा।**

**Saravanan v. State Represented by the Inspector of Police**

**Judgment dated 15.10.2020 passed by the Supreme Court in Criminal Appeal No. 681 of 2020, reported in AIR 2020 SC 5010 (Three Judge Bench)**

**Relevant extracts from the judgment:**

Having heard the learned Counsel for the respective parties and considering the scheme and the object and purpose of default bail/statutory bail, we are of the opinion that the High Court has committed a grave error in imposing condition that the Appellant shall deposit a sum of ₹ 8,00,000/- while releasing the Appellant on default bail/statutory bail. It appears that the High Court has imposed such a condition taking into consideration the fact that earlier at the time of hearing of the regular bail application, before the learned



Magistrate, the wife of the Appellant filed an affidavit agreeing to deposit ₹ 7,00,000/-. However, as observed by this Court in catena of decisions and more particularly in the case of *Rakesh Kumar Paul v. State of Assam*, AIR 2017 SC 3948, where the investigation is not completed within 60 days or 90 days, as the case may be, and no chargesheet is filed by 60<sup>th</sup> or 90<sup>th</sup> day, Accused gets an “indefeasible right” to default bail, and the Accused becomes entitled to default bail once the Accused applies for default bail and furnish bail. Therefore, the only requirement for getting the default bail/statutory bail Under Section 167(2), Code of Criminal Procedure is that the Accused is in jail for more than 60 or 90 days, as the case may be, and within 60 or 90 days, as the case may be, the investigation is not completed and no chargesheet is filed by 60<sup>th</sup> or 90<sup>th</sup> day and the Accused applies for default bail and is prepared to furnish bail. No other condition of deposit of the alleged amount involved can be imposed. Imposing such condition while releasing the Accused on default bail/statutory bail would frustrate the very object and purpose of default bail under Section 167(2), Cr.P.C. As observed by this Court in the case of *Rakesh Kumar Paul* (supra) and in other decisions, the Accused is entitled to default bail/statutory bail, subject to the eventuality occurring in Section 167, Code of Criminal Procedure, namely, investigation is not completed within 60 days or 90 days, as the case may be, and no chargesheet is filed by 60<sup>th</sup> or 90<sup>th</sup> day and the Accused applies for default bail and is prepared to furnish bail.

As observed hereinabove and even from the impugned orders passed by the High Court, it appears that the High Court while releasing the Appellant on default bail/statutory bail has imposed the condition to deposit ₹ 8,00,000/- taking into consideration that earlier before the learned Magistrate and while considering the regular bail application Under Section 437 Cr.P.C., the wife of the Accused filed an affidavit to deposit ₹ 7,00,000/-. That cannot be a ground to impose the condition to deposit the amount involved, while granting default bail/statutory bail.



**76. CRIMINAL PROCEDURE CODE, 1973 – Section 167 (2), Proviso (a), Explanation I (as inserted by Act 45 of 1978)**

**CONSTITUTION OF INDIA – Article 21**

**N.D.P.S. ACT, 1985 – Section 36A (4) [as inserted by (Amendment) Act of (9 of 2001)]**

- (i) **Default bail – Indefeasible right, availing of – Once the accused files an application for bail u/s 167 (2) CrPC r/w/s 36 A (4) NDPS Act upon expiry of 180 days or the extended period, he is deemed to have ‘availed of’ or enforced his rights to be released on default bail.**
- (ii) **Right of default bail – When will be extinguished? If the accused fails to apply for default bail and subsequently chargesheet, additional complaint or application for seeking extension of time is filed, the right of default bail would be extinguished.**

- (iii) **Purpose of issuance of notice** – Its only purpose is that Public Prosecutor can satisfy the court that the prosecution has already obtained an order of extension of time or *challan* has been filed or prescribed period has not expired.

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 – धारा 167(2), परन्तुक (क) स्पष्टीकरण ।  
(1978 के अधिनियम सं. 45 के द्वारा यथा अन्तःस्थापित)

भारत का संविधान – अनुच्छेद 21

स्वापक औषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985 – धारा 36क (4)  
(संशोधन) अधिनियम 2001 के 9 के द्वारा अन्तःस्थापित)

- (i) **व्यतिक्रम जमानत** – अजेय अधिकार का प्रयोग करना – एक बार अभियुक्त धारा 167 (2) दं.प्र.सं. सहपठित धारा 36क (4) एनडीपीएस एक्ट के तहत 180 दिनों की समाप्ति के बाद अथवा विस्तारित समय अवधि के पश्चात् आवेदन प्रस्तुत कर देता है तो यह माना जावेगा कि उसके द्वारा व्यतिक्रम जमानत पर रिहा होने के अधिकार का उपयोग अथवा प्रयोग कर लिया गया है ।
- (ii) **व्यतिक्रम जमानत का अधिकार** – कब निर्वापित होगा? यदि अभियुक्त व्यतिक्रम जमानत के लिए आवेदन करने में असफल रहता है और इसके बाद अभियोग पत्र, अतिरिक्त परिवाद या समय को विस्तारित करने हेतु प्रार्थना पत्र प्रस्तुत किया जाता है, तब व्यतिक्रम जमानत का अधिकार निर्वापित होगा ।
- (iii) **सूचना पत्र जारी किये जाने का प्रयोजन** – इसका मात्र यह उद्देश्य है कि लोक अभियोजक न्यायालय को संतुष्ट करा सके कि अभियोजन पूर्व से ही समय को विस्तारित करने का आदेश प्राप्त कर चुका है अथवा अभियोग पत्र प्रस्तुत किया जा चुका है अथवा निर्धारित समय पूर्ण नहीं हुआ है ।

**M. Ravindran v. Intelligence Officer, Directorate of Revenue Intelligence**

Judgment dated 26.10.2020 passed by the Supreme Court in Criminal Appeal No. 699 of 2020, reported in AIR 2020 SC 5245 (Three Judge Bench)

**Relevant extracts from the judgment:**

It must also be added and it is well settled that issuance of notice to the State on the application for default bail filed under the Proviso to Section 167(2) is only so that the Public Prosecutor can satisfy the Court that the prosecution has already obtained an order of extension of time from the Court; or that the *challan* has been filed in the designated Court before the expiry of the prescribed period; or that the prescribed period has actually not expired. The prosecution can accordingly urge the Court to refuse granting bail on the alleged ground of default. Such issuance of notice would avoid the possibility of the Accused obtaining default bail by deliberate or inadvertent suppression of certain facts and also guard against multiplicity of proceedings.

Once the Accused files an application for bail under the Proviso to Section 167(2) he is deemed to have 'availed of' or enforced his right to be released on default bail, accruing after expiry of the stipulated time limit for investigation. Thus, if the Accused applies for bail under Section 167(2), Cr.P.C. read with Section 36A(4), NDPS Act upon expiry of 180 days or the extended period, as the case may be, the Court must release him on bail forthwith without any unnecessary delay after getting necessary information from the public prosecutor, as mentioned supra. Such prompt action will restrict the prosecution from frustrating the legislative mandate to release the Accused on bail in case of default by the investigative agency.

However, where the Accused fails to apply for default bail when the right accrues to him, and subsequently a chargesheet, additional complaint or a report seeking extension of time is preferred before the Magistrate, the right to default bail would be extinguished. The Magistrate would be at liberty to take cognizance of the case or grant further time for completion of the investigation, as the case may be, though the Accused may still be released on bail under other provisions of the Cr.P.C..



#### **77. CRIMINAL PROCEDURE CODE 1973 – Sections 167 (2), 436-A, 437 and 439**

- (i) **Default bail – Duty of Magistrate – Guidelines issued –** Magistrate is duty bound to bring to the notice of the undertrial that he has a right to statutory bail – Further, in the event of indigency and financial breakdown of accused, it is the duty of Magistrate to bring it to the notice of DLSA for assistance
- (ii) **Bail – Proviso to section 436A CrPC gives extraordinary power to the Court and it is the duty of the court to examine the applicability of this section in each and every case.**

**दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 – धाराएं 167 (2) 436—क, 437 एवं 439**

- (i) **व्यतिक्रम जमानत – मजिस्ट्रेट का कर्तव्य –** दिशानिर्देश जारी किये गए – मजिस्ट्रेट विचाराधीन को यह संसूचित करने के लिए कर्तव्यबंध है कि उसे विधितः जमानत प्राप्त करने का अधिकार है – यह भी, कि अभियुक्त के निर्धन होने अथवा आर्थिक यप से पिछड़े होने की दशा में सहायता हेतु जिला विधिक सेवा प्राधिकरण को सूचित करना मजिस्ट्रेट का कर्तव्य है।
- (ii) **जमानत – धारा 436—क दं.प्र.सं. का परन्तुक न्यायालय को असाधारण शक्तियाँ प्रदान करता है और प्रत्येक प्रकरण में इस प्रावधान की प्रयोज्यता का परीक्षण करना न्यायालय का कर्तव्य है।**

**Hyat Mohd. Shoukat v. State of M.P.**

**Order dated 07.08.2020 passed by the High Court of Madhya Pradesh in Miscellaneous Criminal Case No. 13123 of 2020, reported in ILR (2020) MP 2174**

**Relevant extracts from the order:**

The increasing insensitivity of the criminal justice administration in our State to extend the incarceration of undertrials is disturbing.

This Court feels it essential to lay down certain guidelines to be followed by the Courts below in such cases:

- (1) Where the investigation of an offence does not conclude within the time stipulated in section 167(2) Cr.P.C and the accused becomes eligible to statutory bail, it shall be the duty of the State to inform the Magistrate about the same and also it shall be the duty of the Magistrate to bring it to the notice of the under Trial that he has a right to statutory bail provided he can furnish the bail bonds.
- (2) In the event the under trial on account of his indigency or financial backwardness is unable to provide for bail bonds, it shall be the duty of the Magistrate to bring the same to the notice of the District Legal Services Authority, who shall take the assistance of Non-Governmental Organizations (NGO's) where available, in assisting the under trial to secure statutory bail. The financial backwardness or indigency of the under trial must not come in the way of him securing a statutory bail.
- (3) When bail applications are moved before the learned Court below, be it under section 437 or 439 Cr.P.C, it shall be the solemn duty of the Court to examine in each and every case whether the provision of section 436A Cr.P.C, even if not raised by the accused, would apply in a given case. Where it becomes evident to the Court that the right under section 436A Cr.P.C had accrued to the under trial, it shall release the under trial on his personal bond with or without sureties as provided under section 436A Cr.P.C unless, for compelling reasons to be recorded by the learned Court below, the period of incarceration is to be extended beyond one half of the total sentence which could be imposed upon the under trial for the commission of the said offence.



**78. CRIMINAL PROCEDURE CODE, 1973 – Sections 173 and 190  
INDIAN PENAL CODE, 1860 – Section 302**

**Further investigation – Initially death of deceased sought to be passed of as accidental or suicidal – Investigation not completed for considerable amount of time – Supreme Court orders for conclusion of investigation within the prescribed limit – Closure report filed on the basis that death was homicidal but there was no**

**clue of offenders – Closure report lacks *bonafide* – Setting aside closure report, *de novo* investigation directed by the Apex Court.**

**दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 – धाराएं 173 एवं 190**

**भारतीय दण्ड संहिता, 1860 – धारा 302**

आगामी अन्वेषण – आरंभ में मृतक की मृत्यु का कारण दुर्घटना या आत्महत्या को माना गया – पर्याप्त समय बाद भी अन्वेषण पूर्ण नहीं – उच्चतम न्यायालय ने अन्वेषण को निर्धारित समयावधि में पूर्ण करना आदेशित किया – खात्मा प्रतिवेदन इस आधार पर प्रस्तुत किया गया कि मृत्यु मानव-वध स्वरूप की थी परंतु अभियुक्तगण के संबंध में कोई सुराग नहीं मिला – खात्मा प्रतिवेदन में सद्भावना का अभाव – उच्चतम न्यायालय द्वारा खात्मा प्रतिवेदन अपास्त किया गया – नवीन अन्वेषण निर्देशित।

**Neetu Kumar Nagaich v. State of Rajasthan and ors.**

**Judgment dated 16.09.2020 passed by the Supreme Court in Writ Petition (Crl.) No. 141 of 2020, reported in AIR 2020 SC 5267 (Three Judge Bench)**

**Relevant extracts from the judgment:**

Reverting to the facts of the present case, we find that the occurrence took place in the intervening night of 13.08.2017 and 14.08.2017. The inquest proceedings Under Section 174 Cr.P.C. were registered on 14.08.2017 but remained inconclusive, and now in view of the closure report deserves to be consigned. The death of the deceased was initially sought to be passed off as accidental by collision with a train or suicidal due to depression. The F.I.R. under Section 302, IPC was registered very much belatedly on 29.06.2018, albeit reluctantly, only at the persistence of the Petitioner and her husband after they repeatedly approached the higher authorities. Even thereafter the investigation remained at a standstill till the filing of the counter affidavit before this Court as recent as 03.07.2020 with the Respondents insisting that the death was accidental and that the nature of injuries could not attribute a homicidal death. Earlier the husband of the Petitioner had also petitioned the High Court where till 20.07.2019 the Respondents insisted that the death was accidental in nature. Unfortunately, the High Court despite noticing the long pendency of the investigation took a misguided approach that the Petitioner had not expressed suspicion against any one and neither had he alleged biased against the Investigating Officer, to pass an open ended order to investigate the case and file a report. In this manner, the investigation remained inconclusive for nearly three long years with the investigating agency sanguine of passing it off as an accidental death without coming to a firm conclusion avoiding to complete the investigation. It is only when we ordered on 08.07.2020 that the investigation be concluded within a period of two months and the final report be placed before us, that suddenly a very lengthy investigation closure report has been filed before us taking a stand that though the death was homicidal there was no clue. The closure report is therefore, to our mind, a clear hasty action leaving much

to be desired regarding the nature of investigation, because if a detailed investigation had already been done as is sought to be now suggested, there is no reason why a final report could not have been filed by the investigating agency in the normal course of events and needed an order to do so from this Court. The entire investigation and the closure report therefore lack bonafide. The interest of justice therefore requires a *de novo* investigation to be done, to sustain the confidence of the society in the Rule of law irrespective of who the actors may be.

We, therefore, set aside the closure report and direct a *de novo* investigation by a fresh team of investigators to be headed by a senior police officer of the State consisting of efficient personnel well conversant with use of modern investigation technology also. No officer who was part of the investigating team leading to the closure report shall be part of the team conducting *de novo* investigation. Much time has passed and there is undoubtedly an urgency in the matter now. We therefore direct that such fresh investigation must be concluded within a maximum period of two months from today and the police report be filed before the court concerned whereafter the matter shall proceed in accordance with law.



**79. CRIMINAL PROCEDURE CODE, 1973 – Section 190**

- (i) **Closure Report – Notice – Must be issued by the Court to the complainant whenever closure report is filed.**
- (ii) **Notice – Proposed accused should be noticed whenever complainant challenges order of dismissal of complaint.**

**दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 – धारा 190**

- (i) **खात्मा प्रतिवेदन – सूचना पत्र – खात्मा प्रतिवेदन प्रस्तुत होने पर न्यायालय द्वारा शिकायतकर्ता को सूचना पत्र अवश्यमेव जारी करना चाहिये।**
- (ii) **सूचना पत्र – शिकायतकर्ता द्वारा परिवाद निरस्तगी के आदेश को चुनौती देने पर प्रस्तावित अभियुक्त को सूचना दिया जाना चाहिये।**

**Vijay Singh v. State of M.P. & ors.**

**Order dated 30.11.2019 passed by the High Court of Madhya Pradesh (Gwalior Bench) in Miscellaneous Criminal Case No. 46932 of 2019, reported in ILR (2020) MP 1959**

**Relevant extracts from the order:**

This Court is conscious of the fact that after the dismissal of the complaint, if the order is challenged by the complainant, then the persons arrayed as accused are required to be heard. Thus, it is clear that after the closure report is filed, the Court shall issue notice to the complainant.



- \*80. CRIMINAL PROCEDURE CODE, 1973 – Sections 204 (4) and 378 (4)**  
**Dismissal of complaint – Appeal or revision – Appeal u/s 378 (4) is not maintainable in case of dismissal of private complaint for non-payment of process fee, as such order does not amount to acquittal of accused.**

**दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 – धाराएं 204 (4) एवं 378 (4)**

परिवाद का खारिज किया जाना – अपील अथवा पुनरीक्षण – आदेशिका फीस का भुगतान न होने के कारण निजी परिवाद खारिज हो जाने के प्रकरण के संबंध में धारा 378(4) के अंतर्गत अपील पोषणीय नहीं है क्योंकि ऐसे आदेश का परिणाम अभियुक्त की दोषमुक्ति नहीं होता है।

**Bhagwati Stone Crusher M/s v. Sheikh Nizam Mansoori**

**Judgment dated 01.05.2020 passed by the High Court of Madhya Pradesh in Criminal Appeal No. 9613 of 2019, reported in ILR (2020) MP Short Note 14**



- 81. CRIMINAL PROCEDURE CODE, 1973 – Section 311**

**Recalling of witness – The person, whose evidence appears to be essential for the just decision of the case, may be recalled by the court at any stage.**

**दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 – धारा 311**

साक्षी को पुनः बुलाया जाना – वह व्यक्ति, जिसकी साक्ष्य मामले के न्यायसंगत विनिश्चय हेतु आवश्यक प्रतीत होती है, न्यायालय द्वारा किसी भी प्रक्रम पर पुनः साक्ष्य हेतु बुलाया जा सकता है।

**The State rep. by the D.S.P. v. Tr. N. Seenivasagan**

**Judgment dated 01.03.2021 passed by the Supreme Court in Criminal Appeal No. 231 of 2021, reported in 2021 (1) ANJ (SC) 244**

**Relevant extracts from the judgment:**

In our view, having due regard to the nature and ambit of Section 311 of the Cr.P.C., it was appropriate and proper that the applications filed by the prosecution ought to have been allowed. Section 311 provides that any Court may, at any stage of any inquiry, trial or other proceedings under the Cr. P. C., summon any person as a witness, or examine any person in attendance, though not summoned as a witness, or recall and re-examine any person already examined and the Court shall summon and examine or recall and re-examine any such person “if his evidence appears to it to be essential to the just decision of the case”. The true test, therefore, is whether it appears to the Court that the evidence of such person who is sought to be recalled is essential to the just decision of the case.



**82. CRIMINAL PROCEDURE CODE, 1973 – Sections 437 and 439**

- (i) **Bail – Conditions that can be imposed while allowing bail applications – Court has discretion to impose “any condition” which must be exercised judiciously and compassionately.**
- (ii) **Object of imposing conditions is to facilitate the administration of justice, secure the presence of accused and to ensure that liberty of accused is not misused – However, liberty should not become illusory by imposition of conditions which are disproportionate to the above objectives – Conditions imposed by courts must bear a proportional relationship to the purpose of imposing the conditions.**

**दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 – धाराएं 437 एवं 439**

- (i) **जमानत – जमानत आवेदन स्वीकार करते समय लगाई जाने योग्य शर्तें – न्यायालय को “कोई भी शर्त” अधिरोपित करने का विवेकाधिकार है, परन्तु ऐसे विवेकाधिकार का प्रयोग न्यायसंगत और सहानुभूतिपूर्वक किया जाना चाहिए।**
- (ii) **शर्तें अधिरोपित करने का उद्देश्य – न्याय प्रशासन को सुविधाजनक बनाना, अभियुक्त की उपस्थिति सुनिश्चित करना और यह सुनिश्चित करना है कि अभियुक्त द्वारा स्वतंत्रता का दुरुपयोग नहीं किया जाएगा – तथापि, उपरोक्त उद्देश्यों से अनुपातहीन शर्तें अधिरोपित कर ऐसी स्वतंत्रता भ्रमित या आभासी नहीं बना देनी चाहिए – न्यायालयों द्वारा अधिरोपित शर्तें उन्हें लगाने के उद्देश्य के आनुपातिक होनी चाहिए।**

**Parvez Noordin Lokhandwalla v. State of Maharashtra and anr.  
Judgment dated 01.10.2020 passed by the Supreme Court in Criminal  
Appeal No. 648 of 2020, reported in (2020) 10 SCC 77**

**Relevant extracts from the judgment:**

The language of Section 437(3) CrPC which uses the expression “any condition ... otherwise in the interest of justice” has been construed in several decisions of this Court. Though the competent court is empowered to exercise its discretion to impose “any condition” for the grant of bail under Sections 437(3) and 439(1)(a) CrPC, the discretion of the court has to be guided by the need to facilitate the administration of justice, secure the presence of the accused and ensure that the liberty of the accused is not misused to impede the investigation, overawe the witnesses or obstruct the course of justice. Several decisions of this Court have dwelt on the nature of the conditions which can legitimately be imposed both in the context of bail and anticipatory bail.

In *Dataram Singh v. State of U.P.*, (2018) 3 SCC 22, this Court observed that:

“The grant or refusal of bail is entirely within the discretion of the Judge hearing the matter and though that discretion is unfettered, it must be exercised judiciously and in a humane manner and compassionately. Also, conditions for



the grant of bail ought not to be so strict as to be incapable of compliance, thereby making the grant of bail illusory.”

In *Sumit Mehta v. State (NCT of Delhi)*, (2013) 15 SCC 570, in the context of conditions under Section 438(2) CrPC, this Court observed that a balance has to be struck between the rights of the accused and the enforcement of the criminal justice system while imposing conditions on the grant of bail:

“While exercising power under Section 438 of the Code, the court is duty-bound to strike a balance between the individual’s right to personal freedom and the right of investigation of the police. For the same, while granting relief under Section 438(1), appropriate conditions can be imposed under Section 438(2) so as to ensure an uninterrupted investigation. The object of putting such conditions should be to avoid the possibility of the person hampering the investigation. Thus, any condition, which has no reference to the fairness or propriety of the investigation or trial, cannot be countenanced as permissible under the law. So, the discretion of the court while imposing conditions must be exercised with utmost restraint.”

This Court also discussed the scope of the discretion of the court to impose “any condition” on the grant of bail and observed: [*Sumit Mehta case* (supra)]

“The words “any condition” used in the provision should not be regarded as conferring absolute power on a court of law to impose any condition that it chooses to impose. Any condition has to be interpreted as a reasonable condition acceptable in the facts permissible in the circumstance and effective in the pragmatic sense and should not defeat the order of grant of bail.”

The conditions which a court imposes for the grant of bail — in this case temporary bail — have to balance the public interest in the enforcement of criminal justice with the rights of the accused. The human right to dignity and the protection of constitutional safeguards should not become illusory by the imposition of conditions which are disproportionate to the need to secure the presence of the accused, the proper course of investigation and eventually to ensure a fair trial. The conditions which are imposed by the court must bear a proportional relationship to the purpose of imposing the conditions. The nature of the risk which is posed by the grant of permission as sought in this case must be carefully evaluated in each case.



**83. CRIMINAL PROCEDURE CODE, 1973 – Section 438**

**Anticipatory bail – Maintainability of – Anticipatory bail application is maintainable even if it is filed by an absconding accused.**

**दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 – धारा 438**

अग्रिम जमानत – पोषणीयता – किसी फरार अभियुक्त द्वारा भी प्रस्तुत अग्रिम जमानत का आवेदन भी पोषणीय होता है।

**Rajni Puruswani & anr. v. State of M.P.**

**Order dated 17.06.2020 passed by the High Court of Madhya Pradesh in Miscellaneous Criminal Case No. 13325 of 2020, reported in ILR (2020) MP 1477**

**Relevant extracts from the order:**

So far as maintainability of anticipatory bail is concerned, it is maintainable even the person is declared absconder under Section 82 of Cr.P.C. but on merits case would be governed by the judgment of Apex Court rendered in the case of *Lavesh v. State (NCT of Delhi)*, (2012) 8 SCC 73. There is no any restrictions in the law about the tenability of the application by the accused, who is absconded or against whom the challan has been filed by showing him as an 'absconded accused'. In the aforesaid situation, it may be presumed that the investigation is going on against the aforesaid absconded accused. When he will arrest, then supplementary charge-sheet in the shape of additional evidence will be filed.

In this case the trial Court dismissed the application only upon the ground of tenability, while as per aforesaid law, application was tenable. Trial Court was required to see the merits of the case. If the accused is absconded than definitely it may be a ground for dismissal of application, but it cannot be treated as a bar for the purpose of tenability of application in the light of settled law of Hon'ble Apex Court.



**\*84. CRIMINAL PROCEDURE CODE, 1973 – Section 438**

**Anticipatory bail – When case diary and status report clearly indicate that the accused is absconding and not co-operating with the investigation, successive anticipatory bail application ought not to be entertained – The specious reason of change in circumstances cannot be invoked for successive anticipatory bail applications, once it is rejected by a speaking order and that too by the same judge.**

**दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 – धारा 438**

अग्रिम जमानत – जब केस डायरी तथा प्रतिवेदन से स्पष्ट रूप से यह दर्शित होता है कि अभियुक्त फरार है और अनुसंधान में सहयोग नहीं कर रहा है तब उत्तरवर्ती अग्रिम जमानत आवेदन पर विचार नहीं करना चाहिए – यदि उसी न्यायाधीश द्वारा विस्तृत आदेश करते हुए एक बार अग्रिम जमानत का आवेदन खारिज कर दिया गया है तब परिस्थितियों में परिवर्तन का विशिष्ट कारण उत्तरवर्ती अग्रिम जमानत आवेदन के लिए लागू नहीं होता है।

**G. R. Ananda Babu v. State of Tamil Nadu and anr.**  
Order dated 28.01.2021 passed by the Supreme Court in  
SLP (Crl.) No. 213 of 2021, reported in 2021 (1) Crimes 135 (SC)  
(Three-Judge Bench)



- \*85. CRIMINAL PROCEDURE CODE, 1973 – Section 439 (2)**  
Cancellation of bail – Correctness of order granting bail is subject to assessment by an appellate or superior Court and it may be set aside on the ground that Court granting bail did not consider material facts or crucial circumstances – Setting aside of an unjustified, illegal or perverse order of granting bail is distinct from cancellation of bail on ground of supervening misconduct of accused or because some new facts have emerged, requiring cancellation.

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 – धारा 439 (2)

जमानत की निरस्ती – जमानत स्वीकार करने के आदेश की शुद्धता अपीलीय या वरिष्ठ न्यायालय द्वारा मूल्यांकन के अधीन है और उसे इस आधार पर अपास्त किया जा सकता है कि न्यायालय ने जमानत स्वीकार करने में महत्वपूर्ण सामग्री या परिस्थितियों पर विचार नहीं किया है – जमानत स्वीकार करने का एक अनुचित, अवैध या प्रतिकूल आदेश अपास्त करना अभियुक्त के कदाचरण के आधार पर या कुछ नए तथ्य सामने आने से निरस्ती आवश्यक होने से जमानत की निरस्ती से भिन्न है।

**Dr. Naresh Kumar Mangla v. Smt. Anita Agarwal and ors.**  
Judgment dated 17.12.2020 passed by the Supreme Court in Criminal Appeal No. 872 of 2020, reported in 2021 (1) Crimes 105 (SC)  
(Three Judge Bench)



- 86. CRIMINAL PROCEDURE CODE, 1973 – Sections 451 and 457**  
**INDIAN PENAL CODE, 1860 – Section 379**  
**MINES AND MINERALS (DEVELOPMENT AND REGULATION) ACT, 1957 – Section 21**  
**M.P. MINOR MINERAL RULES, 1996 – Rule 53**  
Release of seized vehicle – Jurisdiction of Court – Magistrate can release vehicle seized by police under section 451 CrPC – The ouster of jurisdiction of the Criminal Court would only occur if the proceeding of forfeiture is completed under Rule 53 of the M.P. Minor Mineral Rules, 1996.

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 – धाराएं 451 एवं 457

भारतीय दण्ड संहिता, 1860 – धारा 379

खान और खनिज (विकास और विनियमन) अधिनियम, 1957 – धारा 21  
मध्यप्रदेश गौण खनिज नियम, 1996 – नियम 53

जप्त वाहन की उन्मुक्ति – न्यायालय की अधिकारिता – पुलिस द्वारा जप्त वाहन को दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 451 के अंतर्गत मजिस्ट्रेट उन्मुक्त कर सकता है – आपराधिक न्यायालय का क्षेत्राधिकार केवल तभी वर्जित होगा यदि मध्यप्रदेश गौण खनिज नियम, 1996 के नियम 53 के अंतर्गत समपहरण की कार्यवाही पूर्ण हो जाये।

**Pratap v. State of M.P.**

**Order dated 27.06.2020 passed by the High Court of Madhya Pradesh (Indore Bench) in Miscellaneous Criminal Case No. 5316 of 2020, reported in ILR (2020) MP 1490**

**Relevant extracts from the order:**

Undisputedly there is no provision for the temporary release of the vehicle to the registered owner either in the MMDR Act of 1957 by the Magistrate or in the “M.P. Minor Mineral Rules, 1996”. The MMDR Act of 1957 and rules (“M.P. Minor Mineral Rules, 1996”) made thereunder nowhere bars or put an embargo on the jurisdiction of the trial court/ Magistrate to entertain an application filed under section 451 of the Cr.P.C. In the case, in hand, the vehicle belonging to the petitioner has been seized by police in crime no. 795/2019 and must have produced before the learned Magistrate, therefore, the magistrate alone has jurisdiction to release the vehicle under section 451 of the Cr.P.C. in absence of any provision in “M.P. Minor Mineral Rules, 1996”. That the FIR has been registered for the offence u/s. 379 of the I.P.C. and u/s. 21 of the MMDR of 1957, and M.Cr.C. No. 5316/2020 being tried under the provisions of the Code of Criminal Procedure particularly the offence under the Indian Penal Code. The doctrine of exclusion of jurisdiction of the regular courts to deal with a matter and to pass appropriate orders in such criminal proceedings is founded in the maxim ‘*Generalia Specialibus Non Derogant*’ (special law overrides general law). In other words, jurisdiction over the Courts to deal with the matter and pass orders under the provisions of the Code of Criminal Procedure should be presumed and to hold the contrary, there must be a specific bar in any special law concerning certain matters under the Criminal Procedure Code and by necessary implication by making such similar provisions to deal with a matter in the special enactments.

Needless to say that even after the temporary release of the vehicle to the applicant, the competent authority under the “M.P. Minor Mineral Rules, 1996” would be competent to pass the order under the provisions of rule 53. The ouster of jurisdiction of the criminal court would only occur if the proceeding of forfeiture is completed under Rule 53 of the “M.P. Minor Mineral Rules, 1996”.



- 87. DRUGS AND COSMETICS ACT, 1940 – Sections 22, 22 (1)(d), 23, 25, 27, 32 and 36 AC**  
**DRUGS AND COSMETICS RULES, 1945 – Rules 51, 51 (4), 51 (5) and 52**  
**CRIMINAL PROCEDURE CODE, 1973 – Sections 154, 167, 173, 178 to 185, 190, 200 and 202**

**Drugs and Cosmetics Act – Trial of offences – Competency – In view of Section 32 of the Act, Police Officer cannot prosecute offenders in regard to such offences – Only persons mentioned in Section 32 are entitled to do the same – Directions issued by the Apex Court.**  
औषधि एवं प्रसाधन सामग्री अधिनियम, 1940 – धाराएं 22, 22 (1)(घ), 23, 25, 27, 32 एवं 36 कग

औषधि एवं प्रसाधन सामग्री नियम, 1945 – नियम 51, 51 (4), 51 (5) एवं 52  
दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 – धाराएं 154, 167, 173, 178 से 185, 190, 200 एवं 202

औषधि एवं प्रसाधन सामग्री अधिनियम – अपराधों का विचारण – सक्षमता – अधिनियम की धारा 32 के आलोक में पुलिस अधिकारी ऐसे अपराधों को अभियोजित नहीं कर सकता है – केवल वे ही व्यक्ति जो धारा 32 में वर्णित हैं ऐसा करने के लिए अधिकृत हैं – उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्देश जारी किए गए।

**Union of India v. Ashok Kumar Sharma and ors.**

**Judgment dated 28.08.2020 passed by the Supreme Court in Criminal Appeal No. 200 of 2020, reported in AIR 2020 SC 5274**

**Relevant extracts from the judgment:**

It is not open to the Police Officer to submit a report under Section 173 of the CrPC in regard to an offence under Chapter IV of the Act under Section 32.

It is true that when the complaint under Section 32 is filed either by the Inspector or by the Authorised Gazetted Officer being public servants under Section 200, the Magistrate is exempted from examining the complainant and witnesses.

Thus, we may cull out our conclusions/directions as follows:

- I. In regard to cognizable offences under Chapter IV of the Act, in view of Section 32 of the Act and also the scheme of the CrPC, the Police Officer cannot prosecute offenders in regard to such offences. Only the persons mentioned in Section 32 are entitled to do the same.
- II. There is no bar to the Police Officer, however, to investigate and prosecute the person where he has committed an offence, as stated under Section 32(3) of the Act, i.e., if he has committed any cognizable offence under any other law.
- III. Having regard to the scheme of the CrPC and also the mandate of Section 32 of the Act and on a conspectus of powers which are available with the Drugs Inspector under the Act and also his duties, a Police Officer cannot register a FIR under Section 154 of the CrPC, in regard to cognizable offences under Chapter IV of the Act and he cannot investigate such offences under the provisions of the CrPC.

- IV. Having regard to the provisions of Section 22(1)(d) of the Act, we hold that an arrest can be made by the Drugs Inspector in regard to cognizable offences falling under Chapter IV of the Act without any warrant and otherwise treating it as a cognizable offence. He is, however, bound by the law as laid down in *D.K. Basu v. State of West Bengal, (1997) 1 SCC 416* and to follow the provisions of CrPC.
- V. It would appear that on the understanding that the Police Officer can register a FIR, there are many cases where FIRs have been registered in regard to cognizable offences falling under Chapter IV of the Act. We find substance in the stand taken by learned *Amicus Curiae* and direct that they should be made over to the Drugs Inspectors, if not already made over, and it is for the Drugs Inspector to take action on the same in accordance with the law. We must record that we are resorting to our power under Article 142 of the Constitution of India in this regard.
- VI. Further, we would be inclined to believe that in a number of cases on the understanding of the law relating to the power of arrest as, in fact, evidenced by the facts of the present case, police officers would have made arrests in regard to offences under Chapter IV of the Act. Therefore, in regard to the power of arrest, we make it clear that our decision that Police Officers do not have power to arrest in respect of cognizable offences under Chapter IV of the Act, will operate with effect from the date of this Judgment.
- VII. We further direct that the Drugs Inspectors, who carry out the arrest, must not only report the arrests, as provided in Section 58 of the CrPC, but also immediately report the arrests to their superior Officers.



**\*88. EVIDENCE ACT, 1872 – Sections 3 and 154**

**Hostile witness – Hostility of independent witnesses does not by itself discredit evidence of the Investigating Officer unless there is something in cross-examination of Investigating Officer to disbelieve him.**

**साक्ष्य अधिनियम, 1872 – धाराएं 3 एवं 154**

पक्षद्रोही साक्षी – स्वतन्त्र साक्षियों की पक्ष द्रोहिता मात्र अपने आप में विवेचना अधिकारी की साक्ष्य को अविश्वसनीय नहीं बनाती है जब तक कि स्वयं विवेचना अधिकारी के प्रतिपरीक्षण में उस पर अविश्वास किये जाने का कोई कारण ना हो।

**Arun v. State of M.P.**

**Judgment dated 10.07.2020 passed by the High Court of Madhya Pradesh (Indore Bench) in Criminal Appeal No. 953 of 2011, reported in ILR (2020) MP 1921 (DB)**



**89. EVIDENCE ACT, 1872 – Sections 8, 9 and 45**

**INDIAN PENAL CODE, 1860 – Section 302**

- (i) Identification parade – Evidentiary value – Finding of guilt cannot be based purely on refusal of the accused to undergo an identification parade.
- (ii) Non-examination of ballistic expert – Effect – There is no inflexible rule which requires the prosecution to examine a ballistics examiner in every case where a murder is alleged to have been caused with the use of a fire arm.

साक्ष्य अधिनियम, 1872 – धाराएं 8, 9 एवं 45

भारतीय दण्ड संहिता, 1860 – धारा 302

- (i) पहचान परेड – साक्ष्यिक मूल्य– दोषसिद्धि विशुद्ध रूप से इस पर अवधारित नहीं की जा सकती कि अभियुक्त ने पहचान परेड का सामना करने से इंकार कर दिया।
- (ii) प्राक्षेपिकी विशेषज्ञ का परीक्षण न कराना – प्रभाव – जहां हत्या आग्नेय अस्त्र के प्रयोग से की जाना आरोपित हो, वहां ऐसा कोई कठोर नियम नहीं है कि प्राक्षेपिकी परीक्षक का परीक्षण कराना अभियोजन के लिए प्रत्येक मामले में आवश्यक हो।

**Rajesh alias Sarkari and anr. v. State of Haryana**

Judgment dated 03.11.2020 passed by the Supreme Court in Criminal Appeal No. 1648 of 2019, reported in AIR 2020 SC 5561 (Three Judge Bench)

**Relevant extracts from the judgment:**

The precedent which we have reviewed above would thus indicate that there is no inflexible rule which requires the prosecution to examine a ballistics examiner in every case where a murder is alleged to have been caused with the use of a fire arm.

The finding of guilt cannot be based purely on the refusal of the accused to undergo an identification parade.



**90. INDIAN PENAL CODE, 1860 – Sections 34, 109, 120-B, 149, 302, 364, 365 and 387**

**EVIDENCE ACT, 1872 – Sections 3, 59, 60, 106, 114 and 133**

**CRIMINAL PROCEDURE CODE, 1973 – Sections 164 and 307**

- (i) Substantive evidence – Is the evidence rendered in Court – It would be impermissible to convict the accused on the basis of the statement made u/s 164 CrPC.
- (ii) Abduction and murder – Abduction followed by murder in appropriate cases can enable a court to presume that the abductor is the murderer.

- (iii) **Evidence of accomplices – Accomplices are credible witnesses when the entire circumstance is borne in mind – Test is whether it is safe to convict the accused believing such witnesses.**

भारतीय दण्ड संहिता, 1860 – धाराएं 34, 109, 120ख, 149, 302, 364, 365 एवं 387

साक्ष्य अधिनियम, 1872 – धाराएं 3, 59, 60, 106, 114 एवं 133

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 – धारा 164

- (i) तात्त्विक साक्ष्य – न्यायालय में दिया गया साक्ष्य ही है – दं.प्र.स. की धारा 164 के तहत किए गये कथन के आधार पर अभियुक्त को दोषी ठहराना अनुमत नहीं होगा।
- (ii) अपहरण एवं हत्या – उपयुक्त मामलों में अपहरण के बाद हुई हत्या न्यायालय को यह उपधारणा करने के लिए समर्थ बनाती है कि अपहरणकर्ता ही हत्यारा है।
- (iii) सहअपराधी की साक्ष्य – सहअपराधी विश्वसनीय साक्षी हैं जबकि संपूर्ण परिस्थितियों को ध्यान में रखा जावे – परीक्षण यह है कि क्या ऐसे साक्षियों पर विश्वास कर अभियुक्त को दोषसिद्ध किया जाना सुरक्षित है।

**Somasundaram alias Somu v. State Rep. by the Deputy Commissioner of Police**

Judgment dated 03.06.2020 passed by the Supreme Court in Criminal Appeal No. 403 of 2010, reported in AIR 2020 SC 3327

**Relevant extracts from the judgment:**

In a case where a witness, in his statement under Section 164 of the CrPC, makes culpability of the accused beyond doubt but when he is put on the witness stand in the trial, he does a complete somersault, as the statement under Section 164 is not substantial evidence then what would be the position? The substantive evidence is the evidence rendered in the Court. Should there be no other evidence against the accused, it would be impermissible to convict the accused on the basis of the statement under Section 164.

We would think that the aforesaid principle would also apply to those persons who illegally confine the person who stands abducted even if there is no evidence that they have themselves carried out the abduction. Section 387 is heightened form of extortion in which the victim is put in the fear of death or grievous hurt. Section 347 involves wrongful confinement of a person for the purpose of committing extortion. The appellants have been convicted under Sections 347 and 387 of the IPC. This is not an inexorable rule but to be applied based on the factual matrix presented before the court. Where abduction is followed by illegal confinement and still later by death, the inference becomes overwhelming that the victim died at the hands of those who abducted/confined him. Nobody has a case that the deceased died a natural death. In *State of W.B. v. Mir Mohamad Omar*, AIR 2000 SC 2988 therein, the Court, inter alia, held as follows:



“When it is proved to the satisfaction of the Court that Mahesh was abducted by the accused and they took him out of that area, the accused alone knew what happened to him until he was with them. If he was found murdered within a short time after the abduction the permitted reasoning process would enable the Court to draw the presumption that the accused have murdered him. Such inference can be disrupted if the accused would tell the Court what else happened to Mahesh at least until he was in their custody.

During arguments we put a question to learned Senior Counsel for the respondents based on a hypothetical illustration. If a boy is kidnapped from the lawful custody of his guardian in the sight of his people and the kidnappers disappeared with the prey, what would be the normal inference if the mangled dead body of the boy is recovered within a couple of hours from elsewhere. The query was made whether upon proof of the above facts an inference could be drawn that the kidnappers would have killed the boy. Learned Senior Counsel finally conceded that in such a case the inference is reasonably certain that the boy was killed by the kidnappers unless they explain otherwise.

In this context we may profitably utilise the legal principle embodied in Section 106 of the Evidence Act which reads as follows: “When any fact is especially within the knowledge of any person, the burden of proving that fact is upon him.

The section is not intended to relieve the prosecution of its burden to prove the guilt of the accused beyond reasonable doubt. But the section would apply to cases where the prosecution has succeeded in proving facts from which a reasonable inference can be drawn regarding the existence of certain other facts, unless the accused by virtue of his special knowledge regarding such facts, failed to offer any explanation which might drive the court to draw a different inference.”

The deceased was brought in a Ford Escort car. He was brought by A4, A11, A16 and A17. It is to be remembered that the case of the prosecution is that except A12, A4 to A18 were the henchmen of A3. We have referred to the evidence against A6, A11 and A16. There are materials other than the deposition of PW11. We hold that the accomplices are credible witnesses when the whole circumstances are borne in mind. Their evidence may not be immaculate in character. By their very nature, that is being accomplices, any such claim would be incongruous. But the test is whether it is safe to convict the accused believing

such witnesses. We are of the view that as regards the crime and the accused, their testimony brings home the truth, as regards accused who are appellants before us. There is no motive attributed to PW10 and PW11 to falsely implicate. The presumption of murder was rightly drawn.



**91. INDIAN PENAL CODE, 1860 – Sections 34 and 302  
EVIDENCE ACT, 1872 – Sections 3, 8 and 9  
CRIMINAL PROCEDURE CODE, 1973 – Section 162  
APPRECIATION OF EVIDENCE:**

**CRIMINAL TRIAL:**

- (i) Forensic evidence – Withholding of – Effect – Held, when vital forensic evidence is kept away, an adverse inference will have to be drawn against the prosecution.
- (ii) Test identification parade – Evidentiary value of – Effect of presence of police – Held, test identification evidence is not a substantive piece of evidence, but can only be used for corroboration of court statements – Further held, when identifications are done in the presence of police, the resultant communication of identifiers tantamount to statements made to police officers in the course of investigation and fall within the ban of Section 162 CrPC.
- (iii) Conduct of witness – Value of – Held, unnatural conduct of witness make them unreliable – Instantly, eye-witness knew the victim, he allegedly saw the assault on victim but kept quiet about the incident – Held, his reaction and conduct does not match up to ordinary person and therefore, his testimony deserves to be discarded.

**भारतीय दण्ड संहिता, 1860 – धाराएं 34 एवं 302**

**साक्ष्य अधिनियम, 1872 – धाराएं 3, 8 एवं 9**

**दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 – धारा 162**

**साक्ष्य का मूल्यांकन:**

**आपराधिक विचारण:**

- (i) फोरेंसिक साक्ष्य – प्रस्तुत न करना – प्रभाव – अभिनिर्धारित, जब महत्वपूर्ण फोरेंसिक साक्ष्य को प्रस्तुत नहीं किया जाता है, तो अभियोजन के विरुद्ध प्रतिकूल निष्कर्ष निकालना होगा।
- (ii) पहचान परेड – साक्ष्यिक मूल्य – पुलिस की उपस्थिति का प्रभाव – अभिनिर्धारित, पहचान परेड सारवान् साक्ष्य नहीं है, अपितु इसका उपयोग मात्र न्यायालयीन साक्ष्य की पुष्टि के लिए किया जा सकता है – आगे अभिनिर्धारित, जब पहचान कार्यवाही पुलिस की उपस्थिति में की जाती है तो पहचान करने वाले व्यक्तियों द्वारा दी गई परिणामी सूचना अनुसंधान के दौरान पुलिस अधिकारियों

को दिए गए बयान का प्रभाव रखेगी और दं.प्र.सं. की धारा 162 के प्रतिबंध के अधीन होगी।

- (iii) साक्षी का आचरण – मूल्य – अभिनिर्धारित, साक्षी का अप्राकृतिक आचरण उसे अविश्वसनीय बनाता है – हस्तगत मामले में चक्षुदर्शी साक्षी पीड़ित को जानता था, उसने कथित रूप से पीड़ित पर हमला होते देखा था परन्तु घटना के बारे में चुप रहा – अभिनिर्धारित, उसकी प्रतिक्रिया और आचरण सामान्य प्रज्ञावान व्यक्ति से मेल नहीं खाते हैं, इसलिए उसकी साक्ष्य अविश्वसनीय है।

**Chunthuram v. State of Chhattisgarh**

**Judgment dated 29.10.2020 passed by the Supreme Court in Criminal Appeal No. 1392 of 2011, reported in (2020) 10 SCC 733 (Three Judge Bench)**

**Relevant extracts from the judgment:**

The alleged weapons of assault recovered on the basis of statement of the accused could be a key evidence to support the prosecution, but unfortunately, the recovered articles were never linked to the crime. The police sent them to the CHC for examination and the CHC doctor (PW 7) had stated that the injuries found on the body could have been caused by those weapons. However, in his cross-examination, the doctor admitted that bloodstains or other marks on the exhibits could not be seen. The weapons were reportedly sent for chemical examination and although the trial court had referred to the report of chemical analyst to conclude the presence of blood on the exhibits but the purported chemical analyst report is not found available with the case records. Moreover, there is no mention of any such report in the High Court's judgment. This would suggest that the prosecution did not produce any chemical analyst report in the case.

The relevant forensic evidence for the seized shirt (supposedly worn by the co-accused Jagan Ram acquitted by the High Court) was withheld by the prosecution. When such vital forensic evidence is kept away, an adverse inference will have to be drawn against the prosecution.

To establish the presence of Chunthuram at the place of incident, the courts relied on the test identification parade and the testimony of Filim Sai (PW 3). The test identification evidence is not substantive piece of evidence but can only be used, in corroboration of statements in court. The ratio in *Musheer Khan v. State of M.P., (2010) 2 SCC 748* will have a bearing on this issue where A.K. Ganguly, J. writing for the Division Bench succinctly summarised the legal position as follows:

“It may be pointed out that identification test is not substantive evidence. Such tests are meant for the purpose of helping the investigating agency with an assurance that their progress with the investigation into the offence is proceeding on right lines.”

The infirmities in the conduct of the test identification parade would next bear scrutiny. The major flaw in the exercise here was the presence of the police during the exercise. When the identifications are held in police presence, the resultant communications tantamount to statements made by the identifiers to a police officer in course of investigation and they fall within the ban of Section 162 of the Code. [See: *Ramkishan Mithanlal Sharma v. State of Bombay*, (1955) 1 SCR 903].

x      x      x

Next the unnatural conduct of PW 4 will require some scrutiny. The witness Bhagat Ram was known to the deceased and claimed to have seen the assault on Laxman by Chunthuram and another person. But curiously, he did not take any proactive steps in the matter to either report to the police or inform any of the family members. Such conduct of the eyewitness is contrary to human nature. In *Amar Singh v. State (NCT of Delhi)*, 2020 SCC OnLine SC 826, one of us, Krishna Murari, J. made the following pertinent comments on the unreliability of such eyewitness:

“The conviction of the appellants rests on the oral testimony of PW 1 who was produced as eyewitness of the murder of the deceased. Both the learned Sessions Judge, as well as High Court have placed reliance on the evidence of PW 1 and ordinarily this Court could be reluctant to disturb the concurrent view but since there are inherent improbabilities in the prosecution story and the conduct of eyewitness is inconsistent with ordinary course of human nature we do not think it would be safe to convict the appellants upon the uncorroborated testimony of the sole eyewitness. Similar view has been taken by a three-Judge Bench of this Court in *Selveraj v. State of T.N.*, (1976) 4 SCC 343 wherein on an appreciation of evidence the prosecution story was found highly improbable and inconsistent of ordinary course of human nature concurrent findings of guilt recorded by the two courts below were set aside.”

The witness here knew the victim, allegedly saw the fatal assault on the victim and yet kept quiet about the incident. If PW 4 had the occasion to actually witness the assault, his reaction and conduct does not match up to ordinary reaction of a person who knew the deceased and his family. His testimony therefore deserves to be discarded.



## **92. INDIAN PENAL CODE, 1860 – Sections 149 and 302**

### **EVIDENCE ACT, 1872 – Sections 8, 45, 59 and 134**

- (i) **Interested eye-witness – Sole testimony – Evidence of sole eye-witness replete with contradictions and omissions – Being an interested witness, such evidence cannot be made basis for conviction.**

- (ii) **Finding of FSL Report – Evidentiary value – FSL report loses its evidentiary value if the accused persons have not been confronted with the finding.**

**भारतीय दण्ड संहिता, 1860 – धाराएं 149 एवं 302**

**साक्ष्य अधिनियम, 1872 – धाराएं 8, 45, 59 एवं 134**

- (i) हितबद्ध प्रत्यक्ष साक्षी – एकल साक्ष्य – एकमात्र प्रत्यक्षदर्शी साक्षी की साक्ष्य जो खंडन एवं लोप से परिपूर्ण है और ऐसा साक्षी हितबद्ध भी है – ऐसी साक्ष्य को दोषसिद्ध का आधार नहीं बनाया जा सकता।
- (ii) एफ.एस.एल. प्रतिवेदन का निष्कर्ष – साक्ष्यिक मूल्य – अभियुक्त परीक्षण में अभियुक्तगण का एफ.एस.एल. प्रतिवेदन के निष्कर्ष से सामना नहीं कराया गया – एफ.एस.एल. प्रतिवेदन उसका साक्ष्यिक मूल्य खो देता है।

**Devkaran v. State of M.P.**

**Judgment dated 10.01.2020 passed by the High Court of Madhya Pradesh (Indore Bench) in Criminal Appeal No. 946 of 2001, reported in 2020 CriLJ 3264 (DB)**

**Relevant extracts from the judgment:**

Devendra Singh Raghuwanshi (PW-11) has stated that Mohabbat in his memorandum Ex. P/26 had informed that he had hidden Dharia in his house which was seized as per Ex. P/39. He also states that appellant-Gattu had given memorandum statement at Ex. P/20 that he had hidden Axe in his house and Axe was seized subsequently from his house. As per Ex. P/22, this witness also states that Narbad had given his memorandum as Ex. P/21 stating that he had hidden sword in his house and the same was seized from his house. This witness also states that these weapons were sent to FSL vide draft Ex. P/45 and the FSL report is Ex. P/46. A perusal of FSL report shows that the articles E, P & Q have shown positive results for finding of blood traces. However, it is not been shown as to whether the blood traces were of human origin or not? In accused statements, the accused persons have not been confronted with the findings of FSL report and in absence of such confrontation, FSL report loses its evidentiary value.

Thus, it is clear that the evidence of sole eye-witness Narendrasingh (PW-2) is replete with contradictions and omissions and he is an interested witness as it was his father who had been killed. In the case of *Mangilal and ors. v. State of Madhya Pradesh, 1990 J LJ 401*, it has been laid down that if the testimony of sole partisan eye-witness is highly unnatural, then the same cannot be made basis for conviction. It can further be seen that there is a discrepancy in the evidence of Antarsingh (PW-1) and Narendrasingh (PW-2). The material witness Premnath has not been examined. FSL report also does not show the origin of blood on weapons to be a human blood. Moreover, this FSL report has not been confronted to the appellants in their accused statements. Hence, no reliance on this FSL report can be possible in arriving at a conclusion. Most importantly, the prosecution has not been able to show that the death of Kamalsingh occurred

in the wee hours on 09.08.2000. Instead, it is found that the death had occurred at-least a day prior to 09.08.2000. The prosecution story, thus crumbles, leading to ultimate acquittal of the appellants.



**93. INDIAN PENAL CODE, 1860 – Section 188**

**CRIMINAL PROCEDURE CODE, 1973 – Section 195**

**There is no bar under Section 195 of CrPC in respect of registration of FIR – What is barred under Section 195 of CrPC is that after investigating an offence under Section 188 of IPC, Police Officer cannot file a final report in Court and Court cannot take cognizance on that final report, as at that stage bar contained in Section 195 of CrPC comes into operation.**

**भारतीय दण्ड संहिता, 1860 – धारा 188**

**दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 – धारा 195**

धारा 195 दं.प्र.सं. के अन्तर्गत प्रथम सूचना रिपोर्ट के पंजीयन पर कोई रोक नहीं है – धारा 195 दं.प्र.सं. के अन्तर्गत रोक यह है कि धारा 188 भा.दं.सं. के अन्तर्गत अनुसंधान के उपरान्त पुलिस अधिकारी न्यायालय में अंतिम प्रतिवेदन प्रस्तुत नहीं कर सकता है और न्यायालय उक्त अंतिम प्रतिवेदन के आधार पर संज्ञान नहीं ले सकता है क्योंकि उक्त चरण पर धारा 195 में उल्लेखित बाधा क्रियाशील हो जाती है।

**Zaid Pathan and ors. v. State of M.P.**

**Order dated 22.12.2020 passed by the High Court of Madhya Pradesh (Indore Bench) in MCrc No. 32779 of 2020, reported in 2021 (1) Crimes 251**

**Relevant extracts from the order:**

The submission of counsel for the petitioners is that as per the procedure prescribed in Section 195 of the Cr.P.C., for the purpose of the offence under Section 188 of the IPC a public servant is required to file a complaint before the competent court and, therefore, the FIR cannot be registered.

Such an argument advanced by counsel for the petitioners is devoid of any merit. A bare reading of Section 195(1) Cr.P.C. reveals that the provisions contained in the sub-section are attracted at the stage of taking cognizance. There is no bar under Section 195 of the Cr.P.C. in respect of registration of FIR, therefore, FIR for an offence under Section 188 of the IPC can be registered by the police and after investigation on the basis of the FIR and the material collected during the course of investigation, a competent public servant can file the complaint before the concerned court. What is barred under Section 195 of the Cr.P.C. is that after investigating the offence under Section 188 of the IPC, the police officer cannot file a final report in the Court and the Court cannot take cognizance on that final report, as at that stage the bar contained in Section 195 of the Cr.P.C. comes into operation.

The Supreme Court in the matter of *State of Punjab v. Raj Singh and anr.*, (1998) 2 SCC 391 wherein the similar issue had arisen, has held that the statutory power of the police to investigate under the Code is not in any way controlled or circumscribed by Section 195 Cr.P.C. In that judgment Hon'ble Supreme Court has held as under:-

"We are unable to sustain the impugned order of the High Court quashing the F.I.R. lodged against the respondents alleging commission of offences under Sections 419, 420, 467 and 468 IPC by them in course of the proceeding of a civil suit, on the ground that Section 195(1)(b)(ii) Cr.P.C. prohibited entertainment of an investigation into the same by the police. From a plain reading of Section 195 Cr.P.C. it is manifest that it comes into operation at the stage when the Court intends to take cognizance of an offence under Section 190(1) Cr.P.C.; and it has nothing to do with the statutory power of the police to investigate into an F.I.R. which discloses a cognizable offence, in accordance with Chapter XII of the Code even if the offence is alleged to have been committed in, or in relation to, any proceeding in Court. In other words, the statutory power of the Police to investigate under the Code is not in any way controlled or circumscribed by Section 195 Cr.P.C. It is of course true that upon the charge-sheet (challan), if any, filed on completion of the investigation into such an offence the Court would not be competent to take cognizance thereof in view of the embargo of Section 195(1)(b) Cr.P.C., but nothing therein deters the Court from filing a complaint for the offence on the basis of the F.I.R. (filed by the aggrieved private party) and the materials collected during investigation, provided it forms the requisite opinion and follows the procedure laid down in section 340 Cr.P.C. The judgment of this Court in *Gopalakrishna Menon v. D. Raja Reddy*, AIR 1983 SC 1053 on which the High Court relied, has no manner of application to the facts of the instant case for their cognizance was taken on a private complaint even though the offence of forgery was committed in respect of a money receipt produced in the civil court and hence it was held that the Court could not take cognizance on such a complaint in view of Section 195 Cr.P.C."

The law laid down in the case of *Raj Singh* (supra) has subsequently been approved by the Supreme Court in the matter of *M. Narayandas v. State of Karnataka and ors.*, (2003) 11 SCC 251. The Hon'ble Supreme Court after taking note of the judgment in the matter of *Raj Singh* (supra) has held as under:-

".....Not only are we bound by this judgment but we are also in complete agreement with the same. Sections 195

and 340 do not control or circumscribe the power of the police to investigate under the Criminal procedure Code. Once investigation is completed then the embargo in Section 195 would come into play and the Court would not be competent to take cognizance. However, that Court could then file a complaint for the offence on the basis of the FIR and the material collected during investigation provided the procedure laid down in Section 340 of the Criminal Procedure Code is followed. Thus no right of the Respondents, much less the right to file an appeal under Section 341, is affected.”

In the matter of *Vishal Agrawal and anr. v. Chhattisgarh State Electricity Board and anr.*, (2014) 3 SCC 696 similar issue came up in reference to the provisions of Section 151 of the Electricity Act, 2003 which also restricts any Court from taking cognizance of an offence punishable under the Electricity Act, except upon an application in writing made by the competent person. The Hon’ble Supreme Court has held that:-

“Thus, the clear principle which emerges from the aforesaid discussion is that even when a Magistrate is to take cognizance when a complaint is filed before it that would not mean that no other a venue is open and the complaint/ FIR cannot be lodged with the police. It is stated at the cost of repetition that the offences under the Electricity Act are also to be tried by applying the procedure contained in the Code. Thus, it cannot be said that complete machinery is provided under the Electricity Act as to how such offences are to be dealt with. In view thereof, we are of the opinion that the respondent’s counsel is right in his submission that if the offence under the Code is cognizable, provisions of Chapter XII containing Section 154 Cr.P.C. and onward would become applicable and it would be the duty of the police to register the FIR and investigate into the same. Sections 135 and 138 only prescribe that certain acts relating to theft of electricity etc. would also be offences. It also enables certain persons/parties, as mentioned in Section 151, to become complainant in such cases and file complaint before a Court in writing. When such a complaint is filed, the Court would be competent to take cognizance straightway. However, that would not mean that other avenues for investigation into the offence which are available would be excluded. It is more so when no such special procedure for trying the offences under the Electricity Act is formulated and the cases under this Act are also to be governed by the Code of Criminal Procedure.”



The above judicial pronouncements make it clear that by virtue of the provisions contained in Section 195(1)(a) of the Cr.P.C. the power of the police to register the FIR for offences mentioned therein is not curtailed but what is curtailed is the jurisdiction of the Court to take cognizance of these offences without there being complaint in writing of the concerned public servant.



**94. INDIAN PENAL CODE, 1860 – Sections 304-B, 406 and 498-A**

**DOWRY PROHIBITION ACT, 1961 – Sections 3 and 4**

**CRIMINAL PROCEDURE CODE, 1973 – Section 389**

**Stay of execution of sentence – Power of Appellate Court – While considering application u/s 389 CrPC to release a convict on bail, it is not open to a court to re-assess or re-analyze the evidence and take a different view.**

**भारतीय दण्ड संहिता, 1860 – धाराएं 304-ख, 406 एवं 498-क**

**दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 – धाराएं 3 एवं 4**

**दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 – धारा 389**

दण्डादेश के निष्पादन का स्थगन – अपीलीय न्यायालय की शक्ति – धारा 389, दं.प्र.सं. के तहत दोषसिद्ध को जमानत पर रिहा किये जाने संबंधी आवेदन पर विचार किए जाते समय न्यायालय के लिए यह अनुमत नहीं है कि वह साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन अथवा पुनर्विश्लेषण कर भिन्न दृष्टिकोण अपनाये।

**Preet Pal Singh v. The State of Uttar Pradesh and anr.**

**Judgment dated 14.08.2020 passed by the Supreme Court in Criminal Appeal No. 520 of 2020, reported in 2020 (3) Crimes 147 (SC)**

**Relevant extracts from the judgment:**

In considering an application for suspension of sentence, the Appellate Court is only to examine if there is such patent infirmity in the order of conviction that renders the order of conviction *prima facie* erroneous. Where there is evidence that has been considered by the Trial Court, it is not open to a Court considering application under Section 389 to re-assess and/or re-analyze the same evidence and take a different view, to suspend the execution of the sentence and release the convict on bail.



**95. INDIAN PENAL CODE, 1860 – Section 376**

**Compromise – When consent of minor is immaterial in relation to an offence, no compromise can be accepted despite her consent.**

**भारतीय दण्ड संहिता, 1860 – धारा 376**

समझौता – जब किसी अपराध के संबंध में अप्राप्तवय की सहमति तत्त्वहीन है तब कोई समझौता उसकी सहमति के पश्चात् भी स्वीकार नहीं किया जा सकता।

**Arif Khan v. State of M.P. & anr.**

**Order dated 20.09.2019 passed by the High Court of Madhya Pradesh (Gwalior Bench) in Miscellaneous Criminal Case No. 39588 of 2019, reported in ILR (2020) MP 1460**

**Relevant extracts from the order:**

It is clear that where the prosecutrix is a minor below 18 years of age, then her consent would be immaterial. When an offence is made out against the accused irrespective of the fact that whether the prosecutrix was a consenting party or not, then certainly, the prosecution cannot be quashed merely on the ground that at a later stage the prosecutrix has entered into a compromise. Once the consent of the minor prosecutrix is immaterial for registration of offence, then such consent shall still remain immaterial for all practical purposes at all the stages including for compromise. Merely because, the minor prosecutrix has later on agreed to enter into a compromise with the applicant, would not be sufficient to quash the proceedings.



**96. MOTOR VEHICLES ACT, 1988 – Sections 140 and 166**

- (i) **Assessment of income – A stereotypical or myopic approach, should not be adopted but realities of life should be taken into account.**
- (ii) **Permanent disability – Determination of – As a typist/data entry operator, full functioning of his hands was essential to earn his livelihood – The extent of his permanent disability was assessed at 89% – Held, applicant still has the use of one arm, is young and as yet, hopefully training himself adequately for some other calling – Looking to the circumstances of the case, Supreme Court assessed permanent disability at 65%.**

**मोटरयान अधिनियम, 1988 – धाराएं 140 एवं 166**

- (i) **आय का आंकलन – एक रूढ़िवादी या अदूरदर्शी दृष्टिकोण नहीं अपनाना चाहिए वरन् जीवन की वास्तविकताओं को विचार में लेना चाहिए।**
- (ii) **स्थायी अयोग्यता – निर्धारण – एक टाइपिस्ट/डाटा एंट्री ऑपरेटर के रूप में हाथों की पूर्ण क्रियाशीलता उसकी आजीविका अर्जन के लिए आवश्यक थी – उसकी स्थायी अयोग्यता का निर्धारण 89 प्रतिशत तक विस्तारित किया गया – अभिनिर्धारित, आवेदक के पास अभी भी उपयोग के लिए एक हाथ है, युवा है और अभी तक उम्मीद है कि वह कुछ अन्य उद्यम के लिए स्वयं को प्रशिक्षित कर रहा है – प्रकरण की परिस्थितियों को देखते हुए उच्चतम न्यायालय ने स्थायी अयोग्यता का निर्धारण 65 प्रतिशत पर किया।**

**Pappu Deo Yadav. v. Naresh Kumar and ors.**

**Judgment dated 17.09.2020 passed by the Supreme Court in Civil Appeal No. 2567 of 2020, reported in 2020 ACJ 2695 (SC) (Three Judge Bench)**

### **Relevant extracts from the judgment:**

Courts should not adopt a stereotypical or myopic approach, but instead, view the matter taking into account the realities of life, both in the assessment of the extent of disabilities and compensation under various heads. In the present case, the loss of an arm, in the opinion of the court, resulted in severe income earning impairment upon the appellant. As a typist/data entry operator, full functioning of his hands was essential to his livelihood. The extent of his permanent disablement was assessed at per cent; however, the High Court halved it to 45 per cent on an entirely wrong application of some 'proportionate' principle, which was illogical and is unsupportable in law. What is to be seen, as emphasized by decision after decision, is the impact of the injury upon the income generating capacity of the victim. The loss of a limb (a leg or arm) and its severity on that account is to be judged in relation to the profession, vocation or business of the victim; there cannot be a blind arithmetic formula for ready application. On an overview of the principles outlined in the previous decisions, it is apparent that the income generating capacity of the appellant was undoubtedly severely affected. Maybe, it is not to the extent of 89 per cent, given that he still has the use of one arm, is young and as yet, hopefully training (and rehabilitating) himself adequately for some other calling. Nevertheless, the assessment of disability cannot be 45 per cent; it is assessed at 65 per cent in the circumstances of this case.

●

### **97. MOTOR VEHICLES ACT, 1988 – Sections 147 (1) r/w/s 39, 56 and 84 (a)**

- (i) Fitness Certificate – Requirement – Not dependent upon the terms and conditions of the Insurance Company, but it is the requirement of law for using the vehicle in accordance with law.**
- (ii) Absence of Fitness Certificate – Vehicle was not having the fitness certificate on the date of accident thus, violating the terms and conditions of the insurance policy – Insurance company is not jointly and severely liable to make payment of compensation.**
- (iii) Pay and recover – Insurance Company shall be liable to make payment of the compensation amount with liberty to recover the same from the owner.**

**मोटरयान अधिनियम, 1988 – धाराएं 147 (1) सहपठित धाराएं 39, 56 एवं 84 (क)**

- (i) फिटनेस प्रमाणपत्र – आवश्यकता – बीमा कंपनी के नियमों और शर्तों पर निर्भर नहीं है, अपितु विधि के अनुसार वाहन का उपयोग करने के लिए विधिक आवश्यकता है।**
- (ii) फिटनेस प्रमाणपत्र का अभाव – दुर्घटना तिथि पर वाहन का फिटनेस प्रमाण-पत्र नहीं था परिणामस्वरूप बीमा पॉलिसी के नियम एवं शर्तों का उल्लंघन हुआ और**

तब बीमा कंपनी प्रतिकर का भुगतान करने के लिए संयुक्ततः और पृथकतः दायी नहीं होगी।

- (iii) भुगतान करो एवं वसूलो – बीमा कंपनी इस स्वतंत्रता के साथ प्रतिकर का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी है कि वह भुगतान की गई राशि मालिक से वसूल कर सकेगी।

**United India Insurance Co. Ltd. v. Vinod and ors.**

**Judgment dated 25.06.2019 passed by the High Court of Madhya Pradesh (Gwalior Bench) in Miscellaneous Appeal No. 1054 of 2015, reported in 2020 ACJ 2641**

**Relevant extracts from the judgment:**

It is clear that for use of a vehicle, Insurance Policy is required under section 147 of Motor Vehicles Act, 1988, and for use of a vehicle, its registration is compulsory and for registration, the fitness certificate of the transport vehicle is necessary under section 56 of Motor Vehicles Act. Use of vehicle without registration is also punishable under section 192 of Motor Vehicles Act. Thus, in the considered opinion of this Court, the requirement of fitness certificate for the liability of the Insurance Company is not dependent upon the terms and conditions of the Insurance Policy, but it is the requirement of law for using the vehicle in accordance with law and none of the term or condition of the Insurance Policy allows the owner of the vehicle to ply the vehicle in contravention of any provision of law. Thus, this Court is of the considered opinion that due to non-availability of the fitness certificate, it can be safely said that the vehicle was being used contrary to the provisions of law, and since, the insurance policy is required under Section 147 of the Motor Vehicles Act, therefore, it cannot be said that Insurance Policy is a private contract of insurance between the driver and the Insurance Company, but in fact it is the statutory requirement

Accordingly, it is held that since the offending vehicle was not having the fitness certificate on the date of the accident, therefore, the terms and conditions of the insurance policy were violated and thus the Insurance Company is not jointly and severally liable to make payment of compensation. However, in the light of the judgments passed by the Supreme Court in the cases of *Amrit Paul Singh v. Tata AIG General Insurance Co. Ltd.*, 2018 ACJ 1768 (SC) and *Shamanna v. Divisional Manager, Oriental Insurance Co. Ltd.*, 2018 ACJ 2163 (SC), it is held that the Insurance Company shall be liable to make payment of the compensation amount with liberty to recover the same from the owner.



**98. MOTOR VEHICLES ACT, 1988 – Section 149 (2) (a) (ii)**

- (i) **Driving license – Absence of endorsement – Effect – Driving license of the driver did not bear the endorsement of transport vehicle – Insurance Company exonerated by the tribunal – Held, no requirement to get separate endorsement to drive**

**transport vehicle of LMV class. [Mukund Dewangan v. Oriental Insurance Co. Ltd., 2017 ACJ 2011 (SC) relied on]**

- (ii) **Liability of Insurance Company – Insurance Company is jointly and severally liable to pay compensation amount along with owner and driver.**

**मोटरयान अधिनियम, 1988 – धारा 149 (2) (क) (ii)**

- (i) चालन अनुज्ञप्ति – पृष्ठांकन का अभाव – प्रभाव – चालक के चालन अनुज्ञप्ति पर वाणिज्यिक वाहन का पृष्ठांकन नहीं था परिणामस्वरूप अधिकरण द्वारा बीमा कंपनी को मुक्त किया गया – अभिनिर्धारित, एल.एम.व्ही. वर्ग के वाणिज्यिक वाहन के चालन हेतु पृथक पृष्ठांकन प्राप्त किये जाने की कोई आवश्यकता नहीं है। [मुकुन्द देवांगन विरुद्ध ओरियंटल इश्योरेंस कंपनी लिमि., 2017 ए.सी.जे. 2011 (एस.सी.) अवलंबित]
- (ii) बीमा कंपनी का दायित्व – मालिक एवं चालक के साथ, बीमा कंपनी प्रतिकर का भुगतान करने के लिए संयुक्ततः एवं पृथकतः दायी है।

**Prabhulal Rajak v. Vijay Kumar Sharma and ors.**

**Judgment dated 02.04.2019 passed by the High Court of Madhya Pradesh (Gwalior Bench) in Miscellaneous Appeal No. 254 of 2013, reported in 2020 ACJ 2765**

**Relevant extracts from the judgment:**

The Counsel for the owner submits that law is very clear that merely placing a judgment for reconsideration will not take away the rights which have already been accrued in terms of the existing judgment as has been held by the Full Bench of this Court in the case of *Oriental Insurance Co. Ltd. v. Sanju Bai, 2016 ACJ 1000 (MP)*, wherein the ratio is that even if the correctness of view expressed in the judgment has been doubted and the question is referred to the larger Bench of the Supreme Court, nevertheless, it is well settled position that so long as the decision of the Supreme Court on the point is in force, the same will be binding on all the subordinate Courts. The fact that the issue has been referred to a larger Bench of the Supreme Court, that cannot be the basis to ignore the decision of the Supreme Court cited on the subject, which is still holding the field and will be, therefore, binding precedent until overturned by the larger Bench of the Supreme Court.

In view of such decision of the Full Bench of this Court in the case of *Sanju Bai* (supra), the judgment rendered by the Hon'ble Supreme Court in the case of *Mukund Dewangan v. Oriental Insurance Co. Ltd., 2017 ACJ 2011 (SC)* is a binding precedent for this Court notwithstanding the fact that it has been placed for reconsideration. Accordingly, the Insurance Company is held jointly and severally liable to pay compensation amount along with owner and driver.



**99. MOTOR VEHICLES ACT, 1988 – Section 166**

**Accident claim – Defence – Insurance Company – In absence of any cogent evidence on record, plea of false implication of vehicle involved in the accident taken by Insurance Company for its defence, cannot be accepted.**

**मोटरयान अधिनियम, 1988 – धारा 166**

दुर्घटना दावा – बचाव – बीमा कम्पनी – अभिलेख पर किसी निश्चायक साक्ष्य के अभाव में बीमा कंपनी द्वारा अपने बचाव हेतु दुर्घटना में वाहन को झूठा शामिल किये जाने का तर्क स्वीकार नहीं किया जा सकता है।

**United India Insurance Co. Ltd. v. Arti and ors.**

**Judgment dated 19.07.2019 passed by the High Court of Madhya Pradesh (Gwalior Bench) in Miscellaneous Appeal No. 354 of 2013, reported in 2020 ACJ 2463**

**Relevant extracts from the judgment:**

In the written statement, which was filed on behalf of respondent No.1, there is plain denial but there is no plea of false implication of the Maruti car. In their written statement under the head of additional pleadings, it is clearly mentioned that onus is on the claimants to prove the accident and admission of the driver of the offending vehicle will not help the claimants but since Insurance Company has failed to discharge its burden and has not led any evidence in this regard, and it is an admitted position that Dhaniram had fallen unconscious and was taken to Jhansi for treatment, plea of false implication of vehicle cannot be accepted simpliciter in absence of any cogent material evidence on record and to that extent facts of the present case are distinguishable from the one in the case of *New India Assurance Company Ltd. v. Smt. Rekha Bai Wd/o Santosh Kumar and ors.*, MACD 2013 (3) (M.P.) 1417. Therefore, appeals, M.A. No. 354/2013 and M.A. No.355/2013, are dismissed as Insurance Company has failed to prove the issue of false implication of the offending vehicle.



**100. MOTOR VEHICLES ACT, 1988 – Section 166**

- (i) Contributory Negligence – Pillion Rider – In a case of composite negligence, pillion rider of the vehicle cannot be held liable for any contributory negligence.**
- (ii) As per circular issued by Insurance Regulatory and Development Authority (IRDA), package policy covers the risk of pillion riders on two wheelers also.**

**मोटरयान अधिनियम, 1988 – धारा 166**

- (i) अंशदायी उपेक्षा – पिछली सीट पर सवार व्यक्ति – किसी मिश्रित उपेक्षा के मामले में, वाहन की पिछली सीट पर बैठे व्यक्ति को किसी अंशदायी उपेक्षा हेतु जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता।**

- (ii) बीमा विनियामक और विकास प्राधिकरण (आई.आर.डी.ए.) द्वारा जारी परिपत्र के अनुसार पैकेज पालिसी, दोपहिया वाहनों में पिछली सीट पर बैठे व्यक्ति के जोखिम को भी सुरक्षा प्रदान करती है।

**Pushpa Bai and ors. v. Kunjlal and ors.**

**Judgment dated 09.04.2019 passed by the High Court of Chhattisgarh in MAC No. 361 of 2014, reported in 2020 ACJ 2479**

**Relevant extracts from the judgment:**

Considering the facts and circumstances of the case, the manner in which the accident occurred, the fact that the deceased was pillion rider, there was head-on collision between two motorcycles ridden by non-applicant No. 2 and non-applicant No. 4, it is a case of composite negligence of non-applicant Nos. 2 and 4 and the deceased being pillion rider, by no stretch of imagination, can be said to be negligent in any manner which contributed to the accident. Therefore, the finding of the Tribunal holding 50% contributory negligence on the part of the deceased is liable to be and is hereby set aside.

True it is that as per insurance policy Ex. D/2, no premium was taken by the Insurance Company for covering the risk of pillion rider. However, as per evidence of NAW-3 Rajiv Singh, Administrative Officer of the Insurance Company, the policy is package policy. As per circular issued by IRDA, package policy covers the risk of pillion riders also.



**101. N.D.P.S. ACT, 1985 – Sections 2 (xxix), 41 (2), 42 (1), 43, 44, 48, 49, 53 and 67**

**EVIDENCE ACT, 1872 – Section 25**

**CRIMINAL PROCEDURE CODE, 1973 – Sections 4 (2), 5, 173, 190 and 193**

**WORDS AND PHRASES:**

**CONSTITUTION OF INDIA – Articles 20 (3) and 21**

**INTERPRETATION OF STATUTES:**

**Confessional statement under NDPS Act – Admissibility of – Officers who are invested with the powers u/s 53 of the NDPS Act are “Police Officers” within the meaning of section 25 of the Evidence Act – Statement recorded u/s 67 of the NDPS Act cannot be used as a confessional statement.**

**स्वापक औषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985 – धाराएं 2(xxix), 41 (2), 42 (1), 43, 44, 48, 49, 53 एवं 67**

**साक्ष्य अधिनियम, 1872 – धारा 25**

**दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 – धाराएं 4 (2), 5, 173, 190 एवं 193**

**शब्द एवं पद:**

**भारत का संविधान – अनुच्छेद 20 (3) एवं 21**

### **संविधियों का निर्वचन:**

एनडीपीएस अधिनियम के अंतर्गत संस्वीकृति कथन – ग्राह्यता – वे अधिकारीगण जिनमें धारा 53 एनडीपीएस अधिनियम की शक्तियाँ निहित की गई हैं वे साक्ष्य अधिनियम की धारा 25 की परिभाषा के अंतर्गत पुलिस अधिकारी हैं – एनडीपीएस अधिनियम की धारा 67 के अंतर्गत अभिलिखित कथनों का उपयोग संस्वीकृति कथन के रूप में नहीं किया जा सकता।

### **Tofan Singh v. State of Tamil Nadu**

**Judgment dated 29.10.2020 passed by the Supreme Court in Criminal Appeal No. 152 of 2013, reported in AIR 2020 SC 5592 (Three Judge Bench)**

#### **Relevant extracts from the judgment:**

We answer the reference by stating:

(i) That the officers who are invested with powers under section 53 of the NDPS Act are “police officers” within the meaning of section 25 of the Evidence Act, as a result of which any confessional statement made to them would be barred under the provisions of section 25 of the Evidence Act, and cannot be taken into account in order to convict an accused under the NDPS Act.

(ii) That a statement recorded under section 67 of the NDPS Act cannot be used as a confessional statement in the trial of an offence under the NDPS Act.



#### **102. N.D.P.S. ACT, 1985 – Section 20 (ii)(c)**

**EVIDENCE ACT, 1872 – Sections 3, 21, 118 and 154**

**CRIMINAL PROCEDURE CODE, 1973 – Section 378**

- (i) **Appeal against acquittal – Power – There is no difference of power, scope, jurisdiction or limitation under the CrPC between appeal against judgments of conviction or of acquittal – Appellate Court can reconsider questions of both law and fact and re-appreciate evidence on record.**
- (ii) **Hostile witness – Credibility – Although witness was declared hostile by the prosecution During cross-examination, he admits having duly perused the contents of these documents before signing them and was not under any form of police pressure – Witness statement broadly corroborates and strengthens the seizure of contraband substance from the possession of the appellant.**

**स्वापक औषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985 – धारा 20 (ii)(ग)**

**साक्ष्य अधिनियम, 1872 – धाराएं 3, 21, 118 एवं 154**

**दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 – धारा 378**



- (i) दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील – शक्ति – दं.प्र.सं. के अंतर्गत दोषसिद्धि अथवा दोषमुक्ति के निर्णय के विरुद्ध अपील में शक्ति, विस्तार, क्षेत्राधिकार या परिसीमा का कोई अंतर नहीं है – अपीलीय न्यायालय विधि एवं तथ्य दोनों प्रश्नों को पुनर्विचारित कर सकता है और अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य को पुनर्मूल्यांकित कर सकता है।
- (ii) पक्षद्रोही साक्षी – विश्वसनीयता – यद्यपि, अभियोजन द्वारा साक्षी को पक्षद्रोही घोषित किया गया – प्रतिपरीक्षण में वह स्वीकार करता है कि हस्ताक्षर करने से पूर्व उसने दस्तावेजों की अंतर्वस्तु को सम्यक् रूप से परिशीलन कर लिया था और वह किसी भी प्रकार के पुलिस दबाव के अधीन नहीं रहा था – साक्षी के कथन मोटे तौर से समर्थित एवं अपीलार्थी के आधिपत्य से मादक पदार्थ की जप्ती को प्रबलता प्रदान करते हैं।

**Raveen Kumar v. State of Himachal Pradesh**

**Judgment dated 26.10.2020 passed by the Supreme Court in Criminal Appeal No. 2187 of 2011, reported in AIR 2020 SC 5375 (Three Judge Bench)**

**Relevant extracts from the judgment:**

The appellant's contention that the High Court could not have set aside a finding of acquittal, is legally unfounded. It has been settled through a catena of decisions that there is no difference of power, scope, jurisdiction or limitation under the CrPC between appeals against judgments of conviction or of acquittal. An appellate Court is free to re-consider questions of both law and fact, and re-appreciate the entirety of evidence on record. There is, nonetheless, a self-restraint on the exercise of such power, considering the interests of justice and the fundamental principle of presumption of innocence. Thus, in practice, appellate Courts are reluctant to interfere with orders of acquittal, especially when two reasonable conclusions are possible on the same material [*Ramabhupala Reddy v. State of Andhra Pradesh, (1970) 3 SCC 474*].

Although declared hostile by the prosecution, Nam Singh (PW1), admits to being literate and having signed his statement on the spot. During cross-examination he admits to having duly perused the contents of these documents before having signed them, and of not being under any form of police pressure, thus, seriously undermining any oral statement to the contrary. His deposition independently establishes that the Maruti van of the appellant had indeed been stopped, the appellant's consent was taken, a search had been conducted, certain items were seized and some substance had been weighed and sealed. Although PW1 claimed not to have specifically witnessed seizure of the charas, but he has not denied so either. He submits that he had gone back to his shop to attend to some customers at that stage of the search. However, he admits to having been shown the extracted sample of charas, which he identified before the trial Court. Thus, far from undermining the prosecution version, PW1's

statement broadly corroborates and strengthens the seizure of contraband substance from the possession of the appellant.



**103. N.D.P.S. ACT, 1985 – Sections 41 to 44 and 53**

**EVIDENCE ACT, 1872 – Sections 3 and 114**

**CRIMINAL PROCEDURE CODE, 1973 – Sections 154, 156 and 157**

**CRIMINAL TRIAL:**

Investigation by an officer who himself is informant/complainant – Effect of – Whether accused is entitled to acquittal on this sole ground? Held, no – The question of bias or prejudice would depend upon the facts and circumstances of each case – Matter has to be decided on case to case basis – Merely because informant is the investigator, by that itself investigation will not suffer from unfairness or bias – Reference made to Constitution Bench answered. [*Mohan Lal v. State of Punjab*, (2018) 17 SCC 627 and *Varinder Kumar v. State of H.P.*, (2020) 3 SCC 321 overruled]

स्वापक औषधि एवं मनः प्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985 – धाराएं 41 से 44 एवं 53

साक्ष्य अधिनियम, 1872 – धाराएं 3 एवं 114

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 – धाराएं 154, 156 एवं 157

आपराधिक विचारणः

ऐसे अधिकारी द्वारा किया गया अनुसंधान जो स्वयं सूचनाकर्ता/परिवादी हो – प्रभाव – क्या अभियुक्त इस एकमात्र आधार पर दोषमुक्ति का पात्र है? अभिनिर्धारित, नहीं – पूर्वाग्रह या पक्षपात का प्रश्न प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा – प्रत्येक मामले के आधार पर इस प्रश्न का निर्धारण किया जाना चाहिए – मात्र इसलिए कि सूचनाकर्ता ही अनुसंधानकर्ता है, स्वयमेव अनुसंधान को अन्यायपूर्ण अथवा पक्षपातपूर्ण नहीं बना देगा – संविधान पीठ को प्रेषित संदर्भ निराकृत किया गया। [*मोहन लाल वि. पंजाब राज्य*, (2018) 17 एससीसी 627 एवं *वरिंदर कुमार वि. हिमाचल प्रदेश राज्य*, (2020) 3 एससीसी 321 उलट दिए गए]

**Mukesh Singh v. State (Narcotic Branch of Delhi)**

Judgment dated 31.08.2020 passed by the Supreme Court in SLP (Crl.)

No. 5648 of 2019, reported in (2020) 10 SCC 120 (Five Judge Bench)

**Relevant extracts from the judgment:**

Section 154 CrPC provides that every information relating to the commission of a cognizable offence, if given orally to an officer in charge of a police station, shall be reduced to writing by him or under his direction.

Section 156 CrPC provides that any officer in charge of a police station may investigate any cognizable offence without the order of a Magistrate. It further

provides that no proceeding of a police officer in any such case shall at any stage be called in question on the ground that the case was one which such officer was not empowered under this section to investigate. Therefore, as such, a duty is cast on an officer in charge of a police station to reduce the information in writing relating to commission of a cognizable offence and thereafter to investigate the same.

Section 157 CrPC specifically provides that if, from information received or otherwise, an officer in charge of a police station has reason to suspect the commission of an offence which he is empowered under Section 156 to investigate, he shall forthwith send a report of the same to a Magistrate empowered to take cognizance of such offence upon a police report and shall proceed in person to the spot to investigate the facts and circumstances of the case and, if necessary, to take measures for the discovery and arrest of the offender.

Therefore, considering Section 157 CrPC, either on receiving the information or otherwise (may be from other sources like secret information, from the hospital, or telephonic message), it is an obligation cast upon such police officer, in charge of a police station, to take cognizance of the information and to reduce into writing by himself and thereafter to investigate the facts and circumstances of the case, and, if necessary, to take measures for the discovery and arrest of the offender. Take an example, if an officer in charge of a police station passes on a road and he finds a dead body and/or a person being beaten who ultimately died and there is nobody to give a formal complaint in writing, in such a situation, and when the said officer in charge of a police station has reason to suspect the commission of an offence, he has to reduce the same in writing in the form of an information/complaint. In such a situation, he is not precluded from further investigating the case. He is not debarred to conduct the investigation in such a situation. It may also happen that an officer in charge of a police station is in the police station and he receives a telephonic message, may be from a hospital, and there is nobody to give a formal complaint in writing, such a police officer is required to reduce the same in writing which subsequently may be converted into an FIR/complaint and thereafter he will rush to the spot and further investigate the matter. There may be so many circumstances like such. That is why, Sections 154, 156 and 157 CrPC come into play.

Under Section 173 CrPC, the officer in charge of a police station after completing the investigation is required to file the final report/charge-sheet before the Magistrate. Thus, under the scheme of CrPC, it cannot be said that there is a bar to a police officer receiving information for commission of a cognizable offence, recording the same and then investigating it. On the contrary, Sections 154, 156 and 157 permit the officer in charge of a police station to reduce the information of commission of a cognizable offence in writing and thereafter to investigate the same. Officer in charge of a police station has been defined under Section 2(o) CrPC and it includes, when the officer in charge of the police station is absent from the station house or unable from illness or other cause to perform his duties, the police officer present at the station house who is next in

rank to such officer and is above the rank of constable or, when the State Government so directs, any other police officer so present.

Now so far as the submission on behalf of the accused that so far as the NDPS Act is concerned, it carries a reverse burden of proof under Sections 35 and 54 and therefore if the informant who himself has seized the offending material from the accused and he himself thereafter investigates the case, there shall be all possibilities of apprehension in the mind of the accused that there shall not be fair investigation and that the officer concerned shall try to prove his own version/seizure and therefore there shall be denial of the "fair investigation" enshrined under Article 21 of the Constitution of India is concerned, it is required to be noted that whether the investigation conducted by the informant concerned was fair investigation or not is always to be decided at the time of trial. The informant/investigator concerned will be cited as a witness and he is always subject to cross-examination. There may be cases in which even the case of the prosecution is not solely based upon the deposition of the informant/informant-cum-investigator but there may be some independent witnesses and/or even the other police witnesses. As held by this Court in a catena of decisions, the testimony of police personnel will be treated in the same manner as testimony of any other witness and there is no principle of law that without corroboration by independent witnesses his testimony cannot be relied upon. [See *Karamjit Singh v. State (NCT of Delhi)*, (2003) 5 SCC 291.] As observed and held by this Court in *Devender Pal Singh v. State (NCT of Delhi)*, (2002) 5 SCC 234, the presumption that a person acts honestly applies as much in favour of a police officer as of other persons, and it is not judicial approach to distrust and suspect him without good grounds therefor.

At this stage, reference may be made to Illustration (e) to Section 114 of the Evidence Act. As per the said provision, in law if an official act has been proved to have been done, it shall be presumed to be regularly done. Credit has to be given to public officers in the absence of any proof to the contrary of their not acting with honesty or within limits of their authority. Therefore, merely because the complainant conducted the investigation that would not be sufficient to cast doubt on the entire prosecution version and to hold that the same makes the prosecution version vulnerable. The matter has to be left to be decided on a case-to-case basis without any universal generalisation.

Now so far as the observations made by this Court in para 13 in *Mohan Lal v. State of Punjab*, (2018) 17 SCC 627 that in the nature of reverse burden of proof, the onus will lie on the prosecution to demonstrate on the face of it that the investigation was fair, judicious with no circumstance that may raise doubt about its veracity, it is to be noted that the presumption under the Act is against the accused as per Sections 35 and 54 of the NDPS Act. Thus, in the cases of reverse burden of proof, the presumption can operate only after the initial burden which exists on the prosecution is satisfied. At this stage, it is required to be noted that the reverse burden does not merely exist in special enactments like

the NDPS Act and the Prevention of Corruption Act, but is also a part of the IPC — Section 304-B and all such offences under the Penal Code are to be investigated in accordance with the provisions of CrPC and consequently the informant can himself investigate the said offences under Section 157 CrPC.

Therefore, as such, there is no reason to doubt the credibility of the informant and doubt the entire case of the prosecution solely on the ground that the informant has investigated the case. Solely on the basis of some apprehension or the doubts, the entire prosecution version cannot be discarded and the accused is not to be straightaway acquitted unless and until the accused is able to establish and prove the bias and the prejudice. As held by this Court in *State of Rajasthan v. Ram Chandra*, (2005) 5 SCC 151 the question of prejudice or bias has to be established and not inferred. The question of bias will have to be decided on the facts of each case [See: *Union of India v. Vipin Kumar Jain*, (2005) 9 SCC 579].

From the above discussion and for the reasons stated above, we conclude and answer the reference as under:

(I) That the observations of this Court in *Bhagwan Singh v. State of Rajasthan*, (1976) 1 SCC 15, *Megha Singh v. State of Haryana*, (1996) 11 SCC 709 and *State v. Rajangam*, (2010) 15 SCC 369 and the acquittal of the accused by this Court on the ground that as the informant and the investigator was the same, it has vitiated the trial and the accused is entitled to acquittal are to be treated to be confined to their own facts. It cannot be said that in the aforesaid decisions, this Court laid down any general proposition of law that in each and every case where the informant is the investigator there is a bias caused to the accused and the entire prosecution case is to be disbelieved and the accused is entitled to acquittal.

(II) In a case where the informant himself is the investigator, by that itself cannot be said that the investigation is vitiated on the ground of bias or the like factor. The question of bias or prejudice would depend upon the facts and circumstances of each case. Therefore, merely because the informant is the investigator, by that itself the investigation would not suffer the vice of unfairness or bias and therefore on the sole ground that informant is the investigator, the accused is not entitled to acquittal. The matter has to be decided on a case-to-case basis. A contrary decision of this Court in *Mohan Lal v. State of Punjab*, (2018) 17 SCC 627 and any other decision taking a contrary view that the informant cannot be the investigator and in such a case the accused is entitled to acquittal are not good law and they are specifically overruled.



**104. NEGOTIABLE INSTRUMENTS ACT, 1881 – Sections 118, 138 and 139  
CRIMINAL PROCEDURE CODE, 1973 – Section 313**

**Presumption and rebuttal – Presumptions u/s 118 and 139 of Negotiable Instruments Act cannot be rebutted just by recording of statement u/s 313 of CrPC by the accused as such statement is not substantive evidence of defence.**

परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 – धाराएं 118, 138 एवं 139

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 – धारा 313

उपधारणा और खंडन – परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 118 एवं 139 की उपधारणाओं का खंडन अभियुक्त द्वारा दं.प्र.सं. की धारा 313 के अंतर्गत कथन मात्र अभिलिखित करवाकर नहीं किया जा सकता क्योंकि धारा 313 के अंतर्गत किये गये कथन बचाव की सारभूत साक्ष्य नहीं है।

**Sumeti Vij v. M/s. Paramount Tech Fab Industries**

**Judgment dated 09.03.2021 passed by the Supreme Court in Criminal Appeal No. 292 of 2021, reported in 2021 (1) ANJ (SC) 254**

**Relevant extracts from the judgment:**

When the complainant exhibited all these documents in support of his complaints and recorded the statement of three witnesses in support thereof, the appellant has recorded her statement under Section 313 of the Code, but failed to record evidence to disprove or rebut the presumption in support of her defence available under Section 139 of the Act.

The statement of the accused recorded under Section 313 of the Code is not a substantive evidence of defence, but only an opportunity to the accused to explain the incriminating circumstances appearing in the prosecution case of the accused. Therefore, there is no evidence to rebut the presumption that the cheques were issued for consideration.



**105. NEGOTIABLE INSTRUMENTS ACT, 1881 – Sections 118 and 139**

- (i) **Presumption – Once the signature of an accused on the cheque/ negotiable instrument are established, then these ‘reverse onus’ clauses become operative – In such a situation, the obligation shifts upon the accused to discharge the presumption imposed upon him.**
- (ii) **Compensation – There needs to be a consistent approach towards awarding compensation and unless such special circumstances exist, the Courts should uniformly levy fine up to twice the cheque amount along with simple interest @ 9% per annum.**

परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 – धाराएं 118 एवं 139

- (i) उपधारणा – एक बार चेक/परक्राम्य लिखत पर अभियुक्त के हस्ताक्षर सिद्ध हो जाएं तब ‘रिवर्स ओनस’ भाग क्रियाशील हो जाता है – ऐसी स्थिति में उपधारणा के खण्डन का दायित्व अभियुक्त पर आ जाता है।
- (ii) प्रतिकर – प्रतिकर दिलाये जाने की दिशा में एक सुसंगत दृष्टिकोण होना चाहिए और जब तक कि विशेष परिस्थितियाँ न हो न्यायालयों को समान रूप से 9% प्रतिवर्ष की दर से साधारण ब्याज के साथ चेक के दो गुने तक राशि जुर्माना करना चाहिए।

**M/s Kalamani Tex and anr. v. P. Balasubramanian**

**Judgment dated 10.02.2021 passed by the Supreme Court in Criminal Appeal No.123 of 2021, reported in 2021 (1) Crimes 202 (SC) (Three Judge Bench)**

**Relevant extracts from the judgment:**

Adverting to the case in hand, we find on a plain reading of its judgment that the trial Court completely overlooked the provisions and failed to appreciate the statutory presumption drawn under Section 118 and Section 139 of NIA. The Statute mandates that once the signature(s) of an accused on the cheque/ negotiable instrument are established, then these 'reverse onus' clauses become operative. In such a situation, the obligation shifts upon the accused to discharge the presumption imposed upon him. This point of law has been crystalized by this Court in *Rohitbhai Jivanlal Patel v. State of Gujarat, (2009) 18 SCC 106* in the following words:

“In the case at hand, even after purportedly drawing the presumption under Section 139 of the NI Act, the trial court proceeded to question the want of evidence on the part of the complainant as regards the source of funds for advancing loan to the accused and want of examination of relevant witnesses who allegedly extended him money for advancing it to the accused. This approach of the trial court had been at variance with the principles of presumption in law. After such presumption, the onus shifted to the accused and unless the accused had discharged the onus by bringing on record such facts and circumstances as to show the preponderance of probabilities tilting in his favour, any doubt on the complainant's case could not have been raised for want of evidence regarding the source of funds for advancing loan to the appellant- accused.....”

Once the 2<sup>nd</sup> Appellant had admitted his signatures on the cheque and the Deed, the trial Court ought to have presumed that the cheque was issued as consideration for a legally enforceable debt. The trial Court fell in error when it called upon the Complainant- Respondent to explain the circumstances under which the appellants were liable to pay. Such approach of the trial Court was directly in the teeth of the established legal position as discussed above, and amounts to a patent error of law.

No doubt, and as correctly argued by senior counsel for the appellants, the presumptions raised under Section 118 and Section 139 are rebuttable in nature. As held in *M.S. Narayana Menon v. State of Kerala, (2006) 6 SCC 39*, which was relied upon in *Basalingappa v. Mudibasappa, (2019) 5 SCC 418*, a probable defence needs to be raised, which must meet the standard of “preponderance of probability”, and not mere possibility. These principles were also affirmed in the case of *Kumar Exports v. Sharma Carpets, (2009) 2 SCC 513*, wherein it was

further held that a bare denial of passing of consideration would not aid the case of accused.

The appellants have banked upon the evidence of DW-1 to dispute the existence of any recoverable debt. However, his deposition merely highlights that the respondent had an over-extended credit facility with the bank and his failure to update his account led to debt recovery proceedings. Such evidence does not disprove the appellants' liability and has a little bearing on the merits of the respondent's complaint. Similarly, the appellants' mere bald denial regarding genuineness of the Deed of Undertaking dated 07.11.2000, despite admitting the signatures of Appellant No.2 thereupon, does not cast any doubt on the genuineness of the said document.

Even if we take the arguments raised by the appellants at face value that only a blank cheque and signed blank stamp papers were given to the respondent, yet the statutory presumption cannot be obliterated. It is useful to cite *Bir Singh v. Mukesh Kumar*, (2019) 4 SCC 197, where this court held that:

“Even a blank cheque leaf, voluntarily signed and handed over by the accused, which is towards some payment, would attract presumption under Section 139 of the Negotiable Instruments Act, in the absence of any cogent evidence to show that the cheque was not issued in discharge of a debt.”

Considering the fact that there has been an admitted business relationship between the parties, we are of the opinion that the defence raised by the appellants does not inspire confidence or meet the standard of ‘preponderance of probability’. In the absence of any other relevant material, it appears to us that the High Court did not err in discarding the appellants' defence and upholding the onus imposed upon them in terms of Section 118 and Section 139 of the NIA.

As regard to the claim of compensation raised on behalf of the respondent, we are conscious of the settled principles that the object of Chapter XVII of the NIA is not only punitive but also compensatory and restitutive. The provisions of NIA envision a single window for criminal liability for dishonour of cheque as well as civil liability for realisation of the cheque amount. It is also well settled that there needs to be a consistent approach towards awarding compensation and unless there exist special circumstances, the Courts should uniformly levy fine up to twice the cheque amount along with simple interest at the rate of 9% per annum. [*R. Vijan v. Baby*, (2012) 1 SCC 260]

The respondent, nevertheless, cannot take advantage of the above cited principles so as to seek compensation. The record indicates that neither did the respondent ask for compensation before the High Court nor has he chosen to challenge the High Court's judgment. Since, he has accepted the High Court's verdict, his claim for compensation stands impliedly overturned. The respondent, in any case, is entitled to receive the cheque amount of Rs.11.20 lakhs which the appellant has already deposited with the Registry of this Court.





**106. NEGOTIABLE INSTRUMENTS ACT, 1881 – Section 141**

**Company – Two private individuals are not included in the term “other association of individuals” – Thus, Section 141 of N.I. Act is not applicable to the individuals.**

**परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 – धारा 141**

**कंपनी – “व्यक्तियों का कोई संगम” शब्दावली में दो निजी व्यक्ति शामिल नहीं हैं – इसलिये परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 141 व्यक्तियों पर लागू नहीं होती है।**

**Alka Khandu Avhad v. Amar Syamprasad Mishra and anr.**

**Judgment dated 08.03.2021 passed by the Supreme Court in Criminal Appeal No. 258 of 2021, reported in 2021 (1) ANJ (SC) 232**

**Relevant extracts from the judgment:**

Section 141 of the Negotiable Instruments Act is relating to the offence by companies and it cannot be made applicable to the individuals. Learned counsel appearing on behalf of the original complainant has submitted that “Company” means any body corporate and includes, a firm or other association of individuals and therefore in case of a joint liability of two or more persons it will fall within “other association of individuals” and therefore with the aid of Section 141 of the Negotiable Instruments Act, the appellant who is jointly liable to pay the debt, can be prosecuted.

The aforesaid cannot be accepted. Two private individuals cannot be said to be “other association of individuals”. Therefore, there is no question of invoking Section 141 of the Negotiable Instruments Act against the appellant, as the liability is the individual liability (may be a joint liabilities), but cannot be said to be the offence committed by a company or by it corporate or firm or other associations of individuals. The appellant herein is neither a Director nor a partner in any firm who has issued the cheque. Therefore, even the appellant cannot be convicted with the aid of Section 141 of the Negotiable Instruments Act.



**\*107. PREVENTION OF FOOD ADULTERATION ACT, 1954 – Sections 2, 7 and 16  
FOOD SAFETY AND STANDARDS ACT, 2006 – Section 97**

**GENERAL CLAUSES ACT, 1897 – Section 6**

**Repeal of 1954 Act by 2006 Act – Effect of – Whether prosecution under 1954 Act could continue even after repeal thereof by 2006 Act? Held, yes – In view of Section 97 of 2006 Act r/w/s 6 of General Clauses Act, 1897, prosecution and punishment under 1954 Act for pending cases are protected.**

**खाद्य अपमिश्रण निवारण अधिनियम, 1954 – धाराएं 2, 7 एवं 16**

**खाद्य सुरक्षा एवं मानक अधिनियम, 2006 – धारा 97**

**साधारण खण्ड अधिनियम, 1897 – धारा 6**

2006 के अधिनियम द्वारा 1954 के अधिनियम का निरसन – प्रभाव – क्या 1954 के अधिनियम के अधीन अभियोजन 2006 के अधिनियम द्वारा उसके निरसन के बाद भी जारी रह सकता है? अभिनिर्धारित, हां – 2006 के अधिनियम की धारा 97 व साधारण खण्ड अधिनियम, 1897 की धारा 6 के द्वारा लंबित मामलों के लिए 1954 के अधिनियम के अधीन अभियोजन और दण्ड संरक्षित है।

**Hindustan Unilever Limited v. State of Madhya Pradesh**  
Judgment dated 05.11.2020 passed by the Supreme Court in Criminal Appeal No. 715 of 2020, reported in (2020) 10 SCC 751 (Three Judge Bench)



**108. PROTECTION OF CHILDREN FROM SEXUAL OFFENCES ACT, 2012 – Sections 7 and 8**

**PROTECTION OF CHILDREN FROM SEXUAL OFFENCES RULES, 2012 – Rule 7(2)**

**Sexual offences – Sole testimony – Conviction can be based on the sole testimony of the victim, if it is found to be reliable and trustworthy.**  
लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम, 2012 – धाराएं 7 एवं 8

लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण नियम, 2012 – नियम 7 (2)  
लैंगिक अपराध – एकमात्र साक्ष्य – केवल पीड़ित की एकमात्र साक्ष्य के आधार पर दोषसिद्धि की जा सकती है यदि वह दृढ़ एवं विश्वसनीय पाई जावे।

**Ganesan v. State Represented by its Inspector of Police**  
Judgment dated 14.10.2020 passed by the Supreme Court in Criminal Appeal No. 680 of 2020, reported in AIR 2020 SC 5019 (Three Judge Bench)

**Relevant extracts from the judgment:**

In the present case, the appellant accused has been convicted by the learned trial Court for the offence under Section 7, punishable under Section 8 of the POCSO Act. We have gone through the entire judgment passed by the learned trial Court as well as the relevant evidence on record, more particularly the deposition of PW1-father of the victim, PW2-mother of the victim and PW3-victim herself. It is true that PW2-mother of the victim has turned hostile. However, PW3-victim has fully supported the case of the prosecution. She has narrated in detail how the incident has taken place. She has been thoroughly and fully cross-examined. We do not see any good reason not to rely upon the deposition of PW3-victim. PW3 aged 15 years at the time of deposition is a matured one. She is trustworthy and reliable. As per the settled proposition of law, even there can be a conviction based on the sole testimony of the victim, however, she must be found to be reliable and trustworthy.



**109. SCHEDULED CASTES AND SCHEDULED TRIBES (PREVENTION OF ATROCITIES) ACT, 1989 – Section 20  
PROTECTION OF CHILDREN FROM SEXUAL OFFENCES ACT, 2012 – Section 42-A  
CRIMINAL TRIAL :**

- (i) **Non-obstante clauses – Interpretation – Where two enactments contain conflicting non-obstante clauses, provision of latter enactment will prevail over the former.**
- (ii) **Offences involving SC and ST (Prevention of Atrocities) Act, 1989 as well as POCSO Act, 2012 – Special Court constituted under which Act is competent to try such offences? Held, Special Court constituted under POCSO Act, 2012 shall conduct trial of such offences.**

**अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 – धारा 20**

**लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम, 2012 – धारा 42—ए  
आपराधिक विचारण**

- (i) **सर्वोपरि खण्ड –निर्वचन – जहां दो अधिनियमों में परस्पर विरोधी सर्वोपरि खण्ड हों, वहां पश्चातवर्ती अधिनियम के प्रावधान पूर्ववर्ती अधिनियम पर प्रभावी होंगे।**
- (ii) **अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 एवं लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम, 2012 के अधीन अपराध – किस अधिनियम के अधीन गठित विशेष न्यायालय ऐसे अपराध का विचारण करने के लिए सक्षम है? अभिनिर्धारित, ऐसे अपराधों का विचारण लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम, 2012 के अधीन गठित विशेष न्यायालय द्वारा किया जाएगा।**

**Pramod Yadav v. The State of Madhya Pradesh & ors.**

**Order dated 22.04.2021 passed by High Court of Madhya Pradesh in Criminal Appeal No. 5189 of 2020 (unreported) (DB)**

**Relevant extracts from the order:**

In case of conflict between two enactments having non-obstante clause, apart from object and purpose for which the Act has been enacted, the latter enactment shall prevail over the provisions of the former Act.

The trial of a case instituted under the provisions of two special Acts viz. Atrocities Act and POCSO Act, shall be conducted by the Special Courts constituted under the POCSO Act.



## PART - II A

### GUIDELINES RELATING TO GRANT OF BAIL

The Apex Court in the case of ***Aparna Bhat and others v. State of Madhya Pradesh and another***, Criminal Appeal No. 329 of 2021 judgment dated 18.03.2021 dealing with the question of grant of bail has observed that Judges play at all levels a vital role as teachers and thought leaders. It is their role to be impartial in words and action, at all times. If they falter, especially in gender related crimes, they imperil fairness and inflict great cruelty in the casual blindness to the despair of the survivors.

It also held that the use of reasoning/language which diminishes the offence and tends to trivialize the survivor, is especially to be avoided under all circumstances and directed that:

- (a) Bail conditions should not mandate, require or permit contact between the accused and the victim. Such conditions should seek to protect the complainant from any further harassment by the accused;
- (b) Where circumstances exist for the court to believe that there might be a potential threat of harassment of the victim, or upon apprehension expressed, after calling for reports from the police, the nature of protection shall be separately considered and appropriate order made, in addition to a direction to the accused not to make any contact with the victim;
- (c) In all cases where bail is granted, the complainant should immediately be informed that the accused has been granted bail and copy of the bail order made over to him/her within two days;
- (d) Bail conditions and orders should avoid reflecting stereotypical or patriarchal notions about women and their place in society, and must strictly be in accordance with the requirements of the Cr. PC. In other words, discussion about the dress, behavior, or past conduct or morals of the prosecutrix, should not enter the verdict granting bail;
- (e) The courts while adjudicating cases involving gender related crimes, should not suggest or entertain any notions (or encourage any steps) towards compromises between the prosecutrix and the accused to get married, suggest or mandate mediation between the accused and the survivor, or any form of compromise as it is beyond their powers and jurisdiction;
- (f) Sensitivity should be displayed at all times by judges, who should ensure that there is no traumatization of the prosecutrix, during the proceedings, or anything said during the arguments, and
- (g) Judges especially should not use any words, spoken or written, that would undermine or shake the confidence of the survivor in the fairness or impartiality of the court.



## **PART - III**

### **CIRCULARS/NOTIFICATIONS**

#### **NOTIFICATION DATED 29.06.2019 OF THE COMMERCIAL TAX DEPARTMENT, GOVT. OF MADHYA PRADESH REGARDING REDUCTION IN STAMP DUTY CHARGEABLE ON THE INSTRUMENTS OF PARTITION EXECUTED IN FAVOUR OF FAMILY MEMBERS**

No. B-4-03-2019-2-V-(12) – In exercise of the powers conferred by clause (a) of sub-section (1) of Section 9 of the Indian Stamp Act, 1899 (No. II of 1899), the State Government, hereby, reduces stamp duty chargeable on the instruments of Partition executed in favour of family member under article 48 (i) of Schedule 1-A and fixes at 0.5 percent of the market value of the separated share or shares of the property.

2. This notification shall come into force from 1<sup>st</sup> July 2019

**By order and in the name of the Governor of Madhya Pradesh**  
**S.D. Richharia, Dy. Secy.**



#### **NOTIFICATION DATED 29.06.2019 OF THE COMMERCIAL TAX DEPARTMENT, GOVT. OF MADHYA PRADESH REGARDING REDUCTION IN STAMP DUTY CHARGEABLE ON THE INSTRUMENTS OF GIFT EXECUTED IN FAVOUR OF FAMILY MEMBERS**

No. B-4-03-2019-2-V-(13) – In exercise of the powers conferred by clause (a) of sub-section (1) of Section 9 of the Indian Stamp Act, 1899 (No. II of 1899), the State Government, hereby, reduces the rate of stamp duty chargeable on the instruments of gift of moveable property executed in favour of family member under clause (i) of article 36 of Schedule 1-A to 1 percent of the market value of the property subject to maximum of ₹ 500.

2. This notification shall come into force from 1<sup>st</sup> July 2019.

**By order and in the name of the Governor of Madhya Pradesh**  
**S.D. Richharia, Dy. Secy.**



**NOTIFICATION DATED 29.06.2019 OF THE COMMERCIAL TAX DEPARTMENT, GOVT. OF MADHYA PRADESH REGARDING REDUCTION IN STAMP DUTY CHARGEABLE ON THE INSTRUMENTS OF SALE EXECUTED UNDER ARTICLE 25 & TRANSFER OF LEASE UNDER ARTICLE 62 OF SCHEDULE 1-A**

No. B-4-03-2019-2-V-(14) – In exercise of the powers conferred by clause (a) of sub-section (1) of Section 9 of the Indian Stamp Act, 1899 (No. II of 1899), the State Government, hereby, amends the stamp duty chargeable on the instruments of sale executed under article 25 and transfer of lease under article 62 of Schedule 1-A and fixes at the rate of 5 percent on the value of property as per market value guideline and in case actual consideration or market value whichever is higher, is in excess of value as per guideline the duty chargeable on the excess part shall be 1 percent

2. This notification shall come into force from 1<sup>st</sup> July 2019.

**By order and in the name of the Governor of Madhya Pradesh**  
**S.D. Richharia, Dy. Secy.**



**NOTIFICATION DATED 29.06.2019 OF THE COMMERCIAL TAX DEPARTMENT, GOVT. OF MADHYA PRADESH REGARDING AMENDMENT IN STAMP DUTY ON THE INSTRUMENTS EXECUTED BY A PERSON TO INCLUDE THE NAME OF HIS WIFE AND/OR HIS/HER DAUGHTER(S) AS CO-OWNER**

No. B-4-03-2019-2-V-(15) – In exercise of the powers conferred by clause (a) of sub-section (1) of Section 9 of the Indian Stamp Act, 1899 (No. II of 1899), the State Government, hereby, amends stamp duty chargeable on the instruments executed by a person to include the name of his wife and/or his/her daughter(s) as co-owner in his/her property under proviso (f) in article 25 of Schedule 1-A and makes it subject to a maximum of ₹ 1000.

2. This notification shall come into force from 1<sup>st</sup> July 2019.

**By order and in the name of the Governor of Madhya Pradesh**  
**S.D. Richharia, Dy. Secy.**



## PART - IV

### IMPORTANT CENTRAL/STATE ACTS & AMENDMENTS

---

#### THE MEDICAL TERMINATION OF PREGNANCY (AMENDMENT) ACT, 2021

NO. 8 OF 2021

*New Delhi, the 25<sup>th</sup> March, 2021*

The following Act of Parliament received the assent of the President on the 25<sup>th</sup> March, 2021, and is hereby published for general information:

An Act further to amend the Medical Termination of Pregnancy Act, 1971.

BE it enacted by Parliament in the Seventy-second Year of the Republic of India as follows:—

1. **Short title and commencement.** – (1) This Act may be called the Medical Termination of Pregnancy (Amendment) Act, 2021.  
(2) It shall come into force on such date as the Central Government may, by notification in the Official Gazette, appoint.
2. **Amendment of section 2.** – In the Medical Termination of Pregnancy Act, 1971 (hereinafter referred to as the principal Act), in section 2,—
  - (i) after clause (a), the following clause shall be inserted, namely:—  
‘(aa) “Medical Board” means the Medical Board constituted under sub-section (2C) of section 3 of the Act;’;
  - (ii) after clause (d), the following clause shall be inserted, namely:—  
‘(e) “termination of pregnancy” means a procedure to terminate a pregnancy by using medical or surgical methods.’.
3. **Amendment of section 3.** – In section 3 of the principal Act, for sub-section (2), the following sub-sections shall be substituted, namely: –  
“(2) Subject to the provisions of sub-section (4), a pregnancy may be terminated by a registered medical practitioner, –
  - (a) where the length of the pregnancy does not exceed twenty weeks, if such medical practitioner is, or
  - (b) where the length of the pregnancy exceeds twenty weeks but does not exceed twenty-four weeks in case of such category of woman as may be prescribed by rules made under this Act, if not less than two registered medical practitioners are,  
of the opinion, formed in good faith, that—
    - (i) the continuance of the pregnancy would involve a risk to the life of the pregnant woman or of grave injury to her physical or mental health; or
    - (ii) there is a substantial risk that if the child were born, it would suffer from any serious physical or mental abnormality.

**Explanation 1.** – For the purposes of clause (a), where any pregnancy occurs as a result of failure of any device or method used by any

woman or her partner for the purpose of limiting the number of children or preventing pregnancy, the anguish caused by such pregnancy may be presumed to constitute a grave injury to the mental health of the pregnant woman.

**Explanation 2.** – For the purposes of clauses (a) and (b), where any pregnancy is alleged by the pregnant woman to have been caused by rape, the anguish caused by the pregnancy shall be presumed to constitute a grave injury to the mental health of the pregnant woman.

- (2A) The norms for the registered medical practitioner whose opinion is required for termination of pregnancy at different gestational age shall be such as may be prescribed by rules made under this Act.
  - (2B) The provisions of sub-section (2) relating to the length of the pregnancy shall not apply to the termination of pregnancy by the medical practitioner where such termination is necessitated by the diagnosis of any of the substantial foetal abnormalities diagnosed by a Medical Board.
  - (2C) Every State Government or Union territory, as the case may be, shall, by notification in the Official Gazette, constitute a Board to be called a Medical Board for the purposes of this Act to exercise such powers and functions as may be prescribed by rules made under this Act.
  - (2D) The Medical Board shall consist of the following, namely: –
    - (a) a Gynaecologist/ Gynecologist;
    - (b) a Paediatrician/ Pediatrician;
    - (c) a Radiologist or Sonologist/ Sinologist; and
    - (d) such other number of members as may be notified in the Official Gazette by the State Government or Union territory, as the case may be.”.
4. **Insertion of new section 5A.** – After section 5 of the principal Act, the following section shall be inserted, namely:—
- “**5A. Protection of privacy of a woman.** – (1) No registered medical practitioner shall reveal the name and other particulars of a woman whose pregnancy has been terminated under this Act except to a person authorised by any law for the time being in force.
- (2) Whoever contravenes the provisions of sub-section (1) shall be punishable with imprisonment which may extend to one year, or with fine, or with both.”.
5. **Amendment of section 6.** – In section 6 of the principal Act, in sub-section (2), after clause (a), the following clauses shall be inserted, namely:—
- “(aa) the category of woman under clause (b) of sub-section (2) of section 3;
  - (ab) the norms for the registered medical practitioner whose opinion is required for termination of pregnancy at different gestational age under sub-section (2A) of section 3;
  - (ac) the powers and functions of the Medical Board under sub-section (2C) of section 3.”.





## THE MADHYA PRADESH CIVIL COURT (AMENDMENT) ACT, 2021

*[Received the assent of the Governor on the 26<sup>th</sup> March, 2021; assent first published in the “Madhya Pradesh Gazette” (Extra-ordinary)” dated the 30<sup>th</sup> March, 2021]*

As Act further to amend the Madhya Pradesh Civil Court Act, 1958.

Be it enacted by the Madhya Pradesh Legislature in the seventy-second of the Republic of India, as follows:-

1. **Short title** – This Act may be called the Madhya Pradesh Civil Court (Amendment) Act, 2021;
2. **Substitution of certain phrases throughout the principal Act** – Except clause (A) of Section 2, Section 25 and Section 26 of the Madhya Pradesh Civil Court Act, 1958 (hereinafter referred to as the principal Act), throughout the principal Act, -
  - (i) for the words “District Judge” wherever they occur, the words “Principal District Judge” shall be substituted;
  - (ii) for the words “Additional District Judge” wherever they occur, the words “District Judge” shall be substituted;
  - (iii) for the words “Civil Judges Class I” wherever they occur, the words “Civil Judge, Senior Division” shall be substituted;
  - (iv) for the words “Civil Judges Class II” wherever they occur, the words “Civil Judge, Junior Division” shall be substituted;
3. **Amendment of Section 2.** – In Section 2 of the principal Act, for Clause (a), the following clause shall be substituted, namely:-

“(a) “cadre of higher Judicial service” means of the cadre of District Judge and shall Include the Principal District Judge, District Judge (Entry Level) and District Judge) Selection Grade;”.
4. **Amendment of Section 18.** – In Section 18 of the Principal Act, the words “District Court”, the words “Principal District Court” shall be substituted.



## मध्यप्रदेश सिविल न्यायालय (संशोधन) अधिनियम, 2021

भोपाल, दिनांक 30 मार्च, 2021

दिनांक 26 मार्च, 2021 को राज्यपाल की अनुमति प्राप्त हुई अनुमति "मध्यप्रदेश राजपत्र (असाधारण)" दिनांक 30 मार्च, 2021 को प्रथम बार प्रकाशित की गई।

मध्यप्रदेश सिविल न्यायालय अधिनियम, 1958 को और संशोधित करने हेतु अधिनियम.

भारत गणराज्य के बहत्तरवें वर्ष में मध्यप्रदेश विधान-मंडल द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियमित हो-

1. **संक्षिप्त नाम** - इस अधिनियम का संक्षिप्त नाम मध्यप्रदेश सिविल न्यायालय (संशोधन) अधिनियम, 2021 है.
2. **सर्वत्र मूल अधिनियम में कतिपय वाक्यांशों का स्थापन** - मध्यप्रदेश सिविल न्यायालय अधिनियम, 1958 (जो इसमें इसके पश्चात् मूल अधिनियम के नाम से निर्दिष्ट है) की धारा 2 के खण्ड (क), धारा 25 तथा 26 को छोड़कर सर्वत्र मूल अधिनियम में -
  - (एक) शब्द "जिला न्यायाधीश" जहां कहीं भी वे आए हों, के स्थान पर, शब्द "प्रधान जिला न्यायाधीश" स्थापित किए जाएं;
  - (दो) शब्द "अपर जिला न्यायाधीश" जहां कहीं भी वे आए हों, के स्थान पर, शब्द "जिला न्यायाधीश" स्थापित किए जाएं;
  - (तीन) शब्द तथा अंक "व्यवहार न्यायाधीश प्रथम वर्ग" जहां कहीं भी वे आए हों, के स्थान पर, शब्द "व्यवहार न्यायाधीश, वरिष्ठ खण्ड" स्थापित किए जाएं;
  - (चार) शब्द तथा अंक "व्यवहार न्यायाधीश द्वितीय वर्ग" जहां कहीं भी वे आए हों, के स्थान पर, शब्द "व्यवहार न्यायाधीश, कनिष्ठ खण्ड" स्थापित किए जाएं;
3. **धारा 2 का संशोधन** - मूल अधिनियम की धारा 2 में, खण्ड (क) के स्थान पर, निम्नलिखित खण्ड स्थापित किया जाए, अर्थात् :-

"(क) "उच्चतर न्यायिक सेवा का संवर्ग" से अभिप्रेत हैं, जिला न्यायाधीशों का संवर्ग और उसमें सम्मिलित हैं, प्रधान जिला न्यायाधीश, जिला न्यायाधीश (प्रवेश स्तर) तथा जिला न्यायाधीश (चयन श्रेणी);".
4. **धारा 18 का संशोधन** - मूल अधिनियम की धारा 18 में, शब्द "जिला न्यायालय" के स्थान पर, शब्द "प्रधान जिला न्यायाधीश" स्थापित किए जाएं.





मध्यप्रदेश उच्च न्यायालय, खण्डपीठ इन्दौर



मध्यप्रदेश उच्च न्यायालय, खण्डपीठ ग्वालियर



मध्यप्रदेश उच्च न्यायालय, जबलपुर

मध्यप्रदेश राज्य न्यायिक अकादमी, जबलपुर  
व्योहारबाग, जबलपुर (म.प्र.) - 482 007